जुलाई 1993 तीन रुपये

कुरुक्षेत्र

LIBRARY

पर्यावरण प्रदूषण: समस्या और समाधान

वर्ष 38 अंक 9 आषाढ़ -श्रावण शक 1915, जुलाई 1993

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

संपादक	:	राम बोध मिश्र
सह संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी

उप निदेशक (उत्पादन)	:	एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	एडवर्ड बेक
आवरण सज्जा	:	आशा सक्सेना

एक प्रति : 3.00 रु० वार्षिक चंदा : 30 रु०

फोटो साभार : रमेश चन्द्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय

विषय सूची

पर्यावरण, स्थायी विकास एवं हम — 2
डा. डी.पी. गर्ग

धरती के विनाश को दस्तक देता वायु प्रदूषण — 6
राजेश कुमार व्यास

आर्थिक विकास का पर्यावरण पर प्रभाव — 8
डा. अधिकेश कुमार राय

गांवों में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या — 10
विजय शंकर

जहरीली होती मृदा की सांसें — 12
राजेश हजेला

वन विनाश एवं उसके दुष्परिणाम — 15
गणेश कुमार पाठक

गांव की ओर (कहानी) — 20
डा. शीतांशु भारद्वाज

भारत में बाल श्रमिकों की वर्तमान स्थिति एवं कानून — 23
डा. आर.एम. यादव

आवश्यकता है पर्यावरण क्रांति की — 26
निशीथ शर्मा

भाग्य का फेर (लघुकथा) — 29
शैफाली

पर्यावरण संरक्षण में उन्नत चूल्हों की भूमिका — 30
ललन कुमार प्रसाद

ग्रामीण विकास और सहकारिता आंदोलन — 32
हरि

धान के खेतों में मछली पालन — 39
पद्मा नन्द कुमार

प्रोटीन और विटामिन मानव आहार के महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत — 40
राजीव रंजन वर्मा

जड़ी-बूटियों का दोहन एक ज्वलंत पर्यावरणीय समस्या — 43
कोशल किशोर चतुर्वेदी

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

पर्यावरण, स्थायी विकास एवं हम

✍ डा. डी.पी.गर्ग

हमारा सामूहिक भविष्य यह दर्शाता है कि अब समय आ गया है, जब कि विश्व के सभी राष्ट्रों की सरकारों को यह भली भांति समझना होगा कि उनके देश की नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था, जिस नाजुक धुरी पर केन्द्रित है, उसका नाम है 'पर्यावरण'। ये सरकारें पर्यावरण की क्षति ही नहीं, बल्कि उन नीतियों को क्रियान्वित करने की भी गुनहगार हैं, जिनके कारण यह क्षति हुई है। ऐसी ही कुछ नीतियां सम्पूर्ण मानव जाति को विनाश के कगार पर खड़ा कर सकती हैं। इन्हें समय रहते बदला जा सकता है लेकिन समय की रेत का एक-एक कण हमारे हाथों से क्षण-क्षण में फिसलता जा रहा है, ऐसे विचार विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग (1988) के हैं।

जून 1992 में, पर्यावरण एवं विकास पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में इस महत्वपूर्ण विषय के विभिन्न पहलुओं पर अत्यंत गहनता से विचार किया गया तथा हमारे सामूहिक भविष्य पर पूर्ण चर्चा की गई। इस सम्मेलन में भारत की भूमिका अत्यंत सराहनीय रही। आशा है विकसित राष्ट्र अपने उत्तरादायित्व को भली-भांति समझेंगे तथा विकासशील राष्ट्र भी अपना पूर्ण कर्तव्य भली-भांति निभायेंगे। इसलिए सभी संबंधितों को 'पर्यावरण, विकास और हम' की सही व्याख्या को समझना होगा। यही इस लेख की विषय सामग्री है।

प्रकृति ने मानव आवश्यकताओं की सभी वस्तुएं समस्त राष्ट्रों को अत्यंत सुव्यवस्थित रीति से उपलब्ध कराई हैं। प्रकृति मानव के अस्तित्व एवं विकास हेतु अपनी समर्पण भावना, हृदय की विशालता तथा दयालुता का पूर्ण परिचय हजारों वर्षों से देती आ रही है। यह मानव तथा प्राणीमात्र के पालन-पोषण, रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं को श्रद्धा एवं लगन से पूर्ण कर रही है। प्रकृति एक अत्यंत ही स्वच्छ, महान, शक्तिशाली और जीवन प्रदाय शक्ति है। यह सरलता, सद्भाव, प्रेम, ममता एवं उत्साह का पाठ पढ़ाती है। यह समस्त विश्व को स्वच्छ पेयजल और शीतल पवन प्रदान करती है। इसके सुनहरे दृश्य एवं संगीत हमारे मन को आकर्षित कर लेते हैं। अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियां तथा फल-फूल इत्यादि भी प्रकृति की ही देन है। परिणामस्वरूप, मानव सूर्य, चंद्र, ग्रहों, जल, पृथ्वी, अग्नि तथा पवन की अत्यंत श्रद्धापूर्वक अनादिकाल से पूजा करता आया है। इसकी प्रशंसा में अनेकों कवियों, लेखकों, कहानीकारों तथा समीक्षकों ने अति सुंदर तथा सुहावना साहित्य सृजित किया है। प्रकृति प्रेमी जब पहाड़ों, जंगलों की ओर निहारते हैं तो उनका हृदय गदगद हो जाता है। मानव ने सदैव प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा की है। मानव इसी पर्यावरण में रहकर सतत् रूप से विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। वह पर्यावरण का संरक्षण अपना पुनीत कर्तव्य समझता है। लेकिन आज की पीढ़ी इस विवरण को केवल एक ऐतिहासिक विवरण मानती है। उसे यह विश्वास ही नहीं होता है कि 'पर्यावरण' इतना महान विषय है।

'पर्यावरण' एक आवास है, जिसमें हम सभी रहते हैं। यह पृथ्वी एक ही है परंतु विश्व के राष्ट्रों में समानता का अभाव है। जीवित रहने के लिए हम सब जीवमंडल पर आधारित हैं। इस तथ्य के बावजूद भी प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति, समुदाय, उप-जाति, उप-वर्ग जीवित रहने एवं प्रगति की होड़ में दूसरों पर पढ़ने वाले कुप्रभावों की किंचित मात्र भी परवाह नहीं करते हैं, लेकिन हमें सामूहिक भलाई के लिए कार्य करना होगा, यही 'स्थायी विकास' है।

स्थायी विकास और पर्यावरण संबंध

'स्थायी विकास' ऐसे विकास को कहते हैं, जिसमें वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं के साथ-साथ इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है कि भविष्य की पीढ़ी का हक न मारा जाए। इसमें दुनिया के गरीबों के जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं तथा उनकी पूर्ति का प्राथमिकता के आधार पर ध्यान रखा जाता है। यह प्रथम उत्तरदायित्व होता है।

पर्यावरण एवं विकास अलग-अलग चुनौतियां नहीं हैं। एक

ही सिक्के के दो पहलू हैं। इनमें चोली दामन का संबंध है। पर्यावरण तथा स्थायी विकास के कारण एवं प्रभाव एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस पर अत्यंत विधिवत रीति से विचार करने की आवश्यकता है।

विश्व के राष्ट्रों को दो भागों- विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों, में विभक्त किया जा सकता है। विकसित राष्ट्र विकास के एक ऐसे 'उच्च शिखर' पर पहुंच गए हैं जहां तक पहुंचने के लिए विकासशील राष्ट्र सतत् रूप से प्रयत्नशील हैं। औद्योगिक देशों के बहुत से विकास के रास्ते स्पष्ट रूप से अस्थायी हैं। ये मानव प्रगति को स्थायी बनाए रखने की क्षमता पर अनेकों पीढ़ियों तक गहरा प्रभाव डालेंगे। बढ़ती आबादी, बढ़ती गरीबी, प्रचंड विषमता तथा पर्यावरण विनाश एक दूसरे से संबंधित हैं। ये सभी हमारे 'विश्व आवास' के पृथ्वी, जल एवं वन इत्यादि अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर अवांछित दबाव डालते हैं।

पर्यावरण तथा उस पर पड़ने वाला प्रभाव एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उदाहरणार्थ जंगल कटने से बरसात का पानी ठहर नहीं पाता, परिणामस्वरूप अपने साथ मिट्टी बहा ले जाता है। ये नदियों तथा झीलों में गाद के रूप में जमा हो जाता है। स्पष्ट है कि एक समस्या दूसरी समस्या को जन्म देती है। अत: इन समस्याओं का समाधान एक साथ ढूंढना होगा। ऐसी स्थिति में वन संरक्षण, मिट्टी के कटाव तथा बहाव को बचाने में सफल होगा।

पर्यावरण पर पड़ने वाले दबाव और आर्थिक प्रगति के तौर-तरीकों का भी आपसी संबंध है। केवल धनार्जन बढ़ाने को ही अर्थव्यवस्था नहीं कहते और न ही पर्यावरण केवल प्रकृति के संरक्षण का दूसरा नाम है। मानव-मात्र के विकास के लिए इन दोनों का समान महत्व है। पर्यावरण संरक्षण नियमों के परिणामस्वरूप आर्थिक विकास प्रभावित नहीं होना चाहिए। विकासशील देशों में इस तालमेल के अभाव में आर्थिक विकास संकट में पड़ गया है।

पर्यावरणीय तथा आर्थिक समस्याएं अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक पहलुओं से जुड़ी हैं। कई राष्ट्रों में पर्यावरण व विकास पर बढ़ती जनसंख्या के पड़ने वाले गहरे प्रभाव के पीछे महिलाओं का दर्जा तथा सांस्कृतिक मूल्यों का हाथ है। पर्यावरणीय दबाव तथा असंतुलित विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक तनाव बढ़ सकता है।

पर्यावरण प्रणालियां राष्ट्रीय सीमाओं का सम्मान नहीं करती हैं। अत: जल प्रदूषण, वातावरण प्रदूषण, भयंकर दुर्घटनाएं विशेषत: परमाणु संयंत्रों एवं जहरीले पदार्थों से भरे भण्डारों से संबद्ध हैं तो इन सब का असर दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक स्पष्ट होता है।

पर्यावरण एवं स्थायी विकास की नीतियां भविष्य की पीढ़ी को भी अधिक प्रभावित करेंगी। अतएव उनकी जरूरतों एवं आकांक्षाओं का भी पूरा ध्यान रखना आवश्यक है।

पर्यावरण प्रदूषण के अनेक घटक

पर्यावरण प्रदूषण के घटकों का अध्ययन इस द्रिशा में सकारात्मक भूमिका निभायेगा जिससे अधिक प्रगतिशील, अधिक न्यायपूर्ण तथा अधिक सुरक्षित भविष्य बनाने एवं पर्यावरण संसाधनों तथा स्थायी मानव विकास की उचित व्यवस्था की नवीन पद्धतियों को खोजने में भी मदद प्राप्त होगी।

(क) मानव अपनी प्रकृति से अन्वेषक है। अतएव वह अनेक नवीन वस्तुओं की खोज करता रहता है। परिणामस्वरूप उसे कृत्रिम सुख एवं विलासिता का अनुभव होता है, लेकिन यहीं उसके विनाश का कारण भी बनता है। नवीन कारें, रेफरीजरेटर्स, एअर कंडीशनर, आकर्षक फर्नीचर, भांति-भांति के नवीन अस्त्र-शस्त्र इत्यादि हमारे इसी दृष्टिकोण के परिचायक हैं। अमीर लोगों के बढ़ते हुए मशीनी जीवन-स्तर से उत्पन्न प्रदूषण के कारण पर्यावरण पर भारी दबाव पढ़ रहा है।

(ख) विश्व के कुछ राष्ट्रों में बढ़ते विकास के कारण जीवन स्तर तथ जीने के तरीकों में अत्यधिक वृद्धि हुई है। इस समृद्धि के पीछे कच्चे माल एवं खर्चीली ऊर्जा पद्धतियों का उपभोग है जिनसे भारी मात्रा में प्रदूषण फैला है। इसका पर्यावरण पर इतना बुरा प्रभाव हुआ है जितना इतिहास में पहले कभी नहीं देखा गया।

(ग) गत शताब्दी में भूमिगत ईंधनों का प्रयोग लगभग तीस गुना बढ़ गया है और औद्योगिक उत्पादन पचास गुने से भी अधिक। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भूमिगत का तीन चौथाई तथा औद्योगिक उत्पादन का लगभग 4/5 भाग 1950 के बाद ही बढ़ा है। आज औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि 1930 के अन्त में सारे यूरोप के कुल उत्पादन के बराबर है। यह पर्यावरण विनाश का कारण बना हुआ है।

(घ) उत्पादन के पारम्परिक तरीकों से भी पर्यावरण प्रभावित हुआ है। पिछले 100 वर्षों में खेती तथा आवास के लिए

जितने जंगल कटे हैं उतने मानव के जन्म से अब तक की समस्त शताब्दियों में कभी नहीं कटे। विश्व संसाधन के अनुसार, वन प्रतिवर्ष 110 लाख हेक्टेयर की दर से समाप्त हो रहे हैं।

(च) विकसित देशों में विश्व की 26 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है जबकि शेष 75 प्रतिशत विकासशील देशों में निवास करती है। विश्व के अमीर औद्योगिक देश ही सबसे अधिक धातु तथा व्यापारिक ऊर्जा का उपयोग करते हैं। व्यापारिक ऊर्जा की 80 प्रतिशत खपत विकसित देशों में होती है। इसी प्रकार कागज का 85 प्रतिशत तथा इस्पात का 79 प्रतिशत उपयोग विकसित राष्ट्रों द्वारा किया जाता है जबकि जनसंख्या विकासशील राष्ट्रों की तुलना में अत्यंत कम है। स्पष्ट है कि प्राकृतिक संसाधनों तथा खाद्य पदार्थों की खपत में विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में काफी अन्तर है।

(छ) भूमिगत ईंधनों के जलाने तथा जंगलों के कटने एवं जलाने से कार्बन डाइ आक्साइड बनती है। वातावरण में कार्बन-डाई आक्साइड और कुछ दूसरी गैसों की वृद्धि से सौर विकिरण को धरती की सतह के नजदीक बंद कर लिया जाता है, परिणामस्वरूप धरती का तापमान बढ़ जाता है। इसके फलस्वरूप अगले 45 वर्षों में समुद्र का जल-स्तर इतना बढ़ सकता है कि उससे बहुत से तटीय इलाकों के पूरी तरह डूबने का खतरा पैदा हो गया है। इससे विश्व की कृषि उत्पादन एवं व्यापार प्रणाली उथल-पुथल हो सकती है। दूसरा खतरा है कि वातावरण के ओजोन परत का टूटना। यह परत इस भूमि पर संचारित जीवन को टिकाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। फोम, रबड़, रैफरीजरेन्ट तथा एयरोसालों के उत्पादन के दौरान बनी गैसों से यह परत टूट रही है। मनुष्य के साथ-साथ मवेशियों तथा समुद्री जीवन पर भी ओजोन के कम होने का भयंकर प्रभाव पड़ सकता है। एन्टार्कटिका के ऊपर स्थित ओजोन की परत में एक छेद 1986 में पाया गया जिससे लगता है कि यह परत अपेक्षा से भी अधिक तेजी के साथ घट रही है।

(ज) शहरों में स्थापित विभिन्न प्रकार के कारखानों की चिमनियां अनेक प्रकार की जहरीली गैसों से वायु पर्यावरण को भी दूषित कर रही हैं। भोपाल स्थित कीट-नाशक मिल से गैस का रिसना हजारों व्यक्तियों को निगल गया। आज भी हजारों गैस पीड़ित उस मनहूस दिन के शिकार हैं। रूस की परमाणु विपत्ति भी ऐसा संदेश देती है।

(झ) औद्योगिक क्षय को नष्ट करने से औद्योगिक गैस उत्पन्न हो रही है, जो पर्यावरण को दूषित कर रही है। जापान की ट्रैफिक पुलिस प्रत्येक दो घन्टे में शुद्ध आक्सीजन का उपयोग आक्सीजन टैंक से करती है। भव्य शहर गैस के शहर बन गये हैं। आंखों में जलन की शिकायत बढ़ गई है। सभी वर्ग तथा सभी स्थानों पर इसका प्रभाव बढ़ रहा है। सड़कों पर दौड़ती मोटर कारें, स्कूटर, टेम्पो, ट्रक इत्यादि प्रतिदिन लाखों टन कार्बन डाइआक्साइड पैदा करते हैं जिससे मानव तथा पेड़ पौधों का जीवन खतरे में पड़ता जा रहा है।

(ट) भूमि स्थिर है लेकिन जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ रही है। विश्व की जनसंख्या 2 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। परिणामस्वरूप भुखमरी तथा प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गयी है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराना एक विकराल समस्या है, इसीलिए अनेक उर्वरकों तथा रासायनिक पदार्थों के उपयोग से खाद्यान्न, फल एवं सब्जियां उत्पन्न की जा रही हैं। इससे उत्पादन बढ़ा है परंतु भूमि की उत्पादकता घटी है। भूमि बंजर होती जा रही है। पौध संरक्षण हेतु उपयोग किए जाने वाले रासायनिक पदार्थ शनैः शनैः मानव शरीर में प्रवेश कर रहे हैं, परिणामस्वरूप कैंसर, दमा एवं अनेक चर्म रोग तेजी से फैल रहे हैं तथा मानव विनाश की ओर पग रख रहा है।

(ठ) भारतवर्ष में गंगा नदी के तट पर बसे 114 नगर जिनमें से प्रत्येक की 50 हजार या उससे अधिक की आबादी है, बिना उपचारित गंदा पानी गंगा में हर दिन उडेल देते हैं। डी.डी.टी. के कारखाने, चर्म शालाएं, कागज और लुगदी-मिलें, रसायन तथा खाद संयंत्र, रबर के कारखाने और ऐसे कई अन्य उद्योग-धन्धों के व्यर्थ पदार्थ गंगा में फेंक दिए जाते हैं। इसी प्रकार मलयेशिया में शहरीकरण की शिकार कलांग घाटी, जहां कुआलालम्पुर की कलांग नदी का जल कृषि व उद्योग के व्यर्थ पदार्थों और गंदगी से दूषित हो चला है।

5. पर्यावरणीय संकट के प्रभाव

कुछ प्रमुख प्रभाव निम्न हैं :

(1) मिट्टी राष्ट्र की अमूल्य सम्पति एवं संसाधन है। भूमि मिट्टी के कटाव के कारण कम होती जा रही है। जबकि नयी भूमि कृषि कार्य के प्रारम्भ होने से अब तक विश्व में 20,000 लाख हेक्टेयर फसल भूमि का कटाव हो चुका है।

(2) एमेजोनिया, लेटिन अमेरिका के जंगल, एशिया तथा अफ्रीका के वनों के लुप्त हो जाने का भय बना हुआ है। यदि ये लुप्त हो गये तो हजारों प्रजातियां नष्ट हो जायेगी।

(3) अनेक प्रकार के वायु-प्रदूषण, भेडों, और झीलों को नष्ट कर रहे हैं तथा भवनों एवं सांस्कृतिक खजानों को हजारों मील दूर तक नुकसान पहुंचा रहे हैं। पर्यावरण के इस तेजाबीकरण ने यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका के अधिकांश भागों में आतंक फैला रखा है। ऐसा अनुमान है कि केन्द्रीय यूरोप की जमीन पर प्रतिवर्ष प्रत्येक वर्ग मीटर पर एक ग्राम "गंधक की वर्षा" हो रही है। भूमि का खिसकना, बाढ़ इत्यादि प्रतिदिन मौसम में परिवर्तन हो रहे हैं। वायु प्रदूषण से हुए विनाश के लक्षण भी विकसित राष्ट्रों में प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट होने लगे हैं।

(4) बड़े पैमाने पर जंगलों के कटने से क्षेत्रीय पर्यावरण पद्धतियों की स्थिरता पर मंडराते हुए खतरे स्पष्ट दिखाई देते हैं। प्रतिवर्ष 60 लाख हेक्टेयर भूमि रेगिस्तान जैसी बंजर हो जाती है। जंगलों तथा जंगली भूमि के विनाश के साथ-साथ पौधे एवं जानवरों की प्रजातियां भी नष्ट हो रही हैं। जमीन का लगभग तीन चौथाई भाग किसी न किसी प्रकार के रेगिस्तानीकरण का एक रूप ले रहा है। अफ्रीका के में रेगिस्तान 16 किलोमीटर प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहा है।

पर्यावरण के खतरे दिनों-दिन बढ़ रहे हैं। पर्यावरणवादी मानव समुदाय को अनेक प्रकार की चेतावनी प्रदान कर रहे हैं। विश्व की अनेक पत्रिकाओं में पर्यावरण के कुप्रभावों पर अनेक लेख प्रतिदिन प्रकाशित हो रहे हैं।

आज के युग में प्रकृति के साथ खिलवाड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यह तीव्रगति से युवावस्था की ओर बढ़ रहा है। एक अहम समस्या उत्पन्न हो गयी है "पर्यावरण का विनाश"। फिर विनाश से पर्यावरण प्रदूषण की उत्पत्ति होती है जो मानव मात्र के लिए ही नहीं बल्कि समस्त प्राणियों के विनाश का निमंत्रण है। इसका प्रभाव एक राष्ट्र पर ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय सीमाओं के उस पार भी पड़ रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तालमेल के फलस्वरूप एक देश की नीतियां दूसरे देश की व्यवस्था पर पूर्ण प्रभाव डालती है। हमारे संबंधों के ताने-बाने को हमारी अर्थव्यवस्था एवं पर्यावरण प्रणालियां और कसती चली जा रही है।

सचिव,
राष्ट्रीय सहकारी प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली।

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया ध्यान रखें कि रचना संक्षिप्त एवं रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रामाणिक होनी चाहिए। रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

धरती के विनाश को दस्तक देता - वायु प्रदूषण

राजेश कुमार व्यास

प्रकृति का अनुशासित व संतुलित स्वरूप है- स्वच्छ पर्यावरण। अगर पर्यावरण स्वच्छ रहता है तो मनुष्य भी स्वच्छ व संतुलित रहेगा। परन्तु अगर पर्यावरण ही दूषित होगा तो मनुष्य का जीवन भी असंतुलित हो जायेगा। अत: स्वस्थ व संतुलित जीवन की एक प्रथम शर्त है - पर्यावरण संरक्षण। हालांकि गत दशकों में मनुष्य ने अपने विकास की गति को काफी तीव्र रखा है परन्तु इस दौरान वह पर्यावरण संरक्षण की ओर लापरवाह हो गया जिसका परिणाम निकला - पर्यावरण प्रदूषण। यही कारण है कि आज विश्व की प्रमुख समस्याओं में से एक पर्यावरण प्रदूषण ही है जिससे आम व्यक्ति त्रस्त होता जा रहा है । वस्तुत: पर्यावरण प्रदूषण एक भयावह समस्या है जिसे अगर समय रहते नियंत्रित नहीं किया गया तो धरती पर स्वस्थ व संतुलित जीवन के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लग जायेगा. इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

प्रदूषण का साधारण अर्थ है पर्यावरण का दूषित होना अर्थात प्रकृति की आनुपातिक संरचना में परिवर्तन होना। स्वच्छ पर्यावरण प्रकृति का अनुशासित व संतुलित स्वरूप है, इसी अनुशासन के भंग होने अथवा संतुलन बिगड़ने से प्रदूषण उत्पन्न होता है। गत दशकों में प्रदूषित होते पर्यावरण की समस्या ने संपूर्ण विश्व को अपनी चपेट में ले लिया है। अंधाधुंध वनों की कटाई, नदियों में कूड़े-कचरे के प्रवाह, रसायनों के असंतुलित प्रयोग आदि अनेक कारणों से पर्यावरण को अत्यधिक खतरा पहुंचा है। तीव्र औद्योगिकरण व बढ़ती जनसंख्या ने भी पर्यावरण को दूषित करने में कम कसर नहीं छोड़ी है। इन सब कारणों से ही वर्तमान में मनुष्य ने जल, वायु, ध्वनि आदि प्रदूषणों को जन्म दे दिया है।

आधुनिक औद्योगिक युग में वायु को प्रदूषण ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। वाहनों के धुएं, कारखानों की चिमनियों से निकले धुओं आदि ने वायु को अत्यधिक प्रदूषित किया है। प्रदूषित वायुमण्डल में अवांछित कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनो-आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड. अधजले हाइड्रो कार्बन के कण आदि मिले रहते हैं। ऐसे वायुमण्डल में श्वास लेने से मनुष्य के शरीर में कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। बढ़ते शहरीकरण व औद्योगीकरण ने वायु को अत्यधिक प्रदूषित किया है। कल-कारखानों द्वारा छोड़े गए धुओं व धूल के कणों, विभिन्न प्रकार की जहरीली गैसों, सड़कों पर दौड़ते वाहनों से निकले धुएँ आदि से वायुमण्डल में श्वास लेना भी दूभर होता जा रहा है। वायु प्रदूषण का एक मुख्य कारण मनुष्य द्वारा वनों की अंधाधुंध कटाई करना भी है। राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश के 33 प्रतिशत भूभाग पर वन होने चाहिए परन्तु हाल ही में उपग्रह द्वारा चित्र लेने पर देश के 10 प्रतिशत भू-भाग पर ही सघन वन पाये गये। एक और जहां देश की जनसंख्या में दिनों-दिन वृद्धि होती जा रही है। वहीं दूसरी ओर वनों का भी ह्रास होता जा रहा है। वस्तुत: वायुमण्डल में आक्सीजन की मात्रा वनस्पतियों द्वारा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से मुक्त आक्सीजन के फलस्वरूप संतुलित रहती है परन्तु वनों के निरन्तर कटाव से वायु प्रदूषण को बढ़ावा मिला है। नष्ट होती वन संपदा व बढ़ते औद्योगीकरण के फलस्वरूप गत वर्षों में वायुमण्डल से 24 लाख टन ऑक्सीजन की समाप्ति हो चुकी है जबकि इसके स्थान पर वायुमण्डल में 36 लाख टन कार्बन डाइआक्साइड उत्पन्न हो गयी है। अगर इसी तरह वायुमण्डल में आक्सीजन के स्थान पर कार्बन डाइआक्साइड बढ़ती रही तो वह दिन भी दूर नहीं रहेगा जब सभी मनुष्यों को धरती पर मास्क लगाकर श्वास लेने को मजबूर होना पड़ेगा।

जनसंख्या के दबाव तथा औद्योगीकरण से नगरों के पेड़-पौधे तेजी से कटते जा रहे हैं, इससे शुद्ध वायु मिलने में कठिनाई हो रही है। वनों के निरन्तर होते विनाश से ही वायुमण्डल को मिलने वाली आक्सीजन की मात्रा कम होती जा रही है। इसी तरह अगर वायुमण्डल में आक्सीजन की मात्रा कम होती रही तो धरती के समस्त जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

वायु प्रदूषण के कारण वायुमण्डल में अत्यधिक असंतुलन पैदा हो गया है । इस के परिणामस्वरूप ही विश्व के समक्ष एक गंभीर समस्या और उत्पन्न हो गयी है- ''ग्रीन हाऊस प्रभाव'' की समस्या के रूप में। ग्रीन हाऊस प्रभाव की समस्या इतनी भयावह है कि इससे समुद्र तटीय नगरों के भविष्य के अस्ति[illegible] पर ही शंका उत्पन्न हो गयी है। वायुमण्डल में कार्बन ड[illegible] आक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, नाइट्रीक आक्साइड, मीथेन

आदि गैसों की वृद्धि हो रही है, जो पृथ्वी के चारों ओर आच्छादित होकर एक सुरक्षित घेरा बना लेती हैं। इसके परिणामस्वरूप सूर्य की किरणें पृथ्वी पर तो आ जाती हैं परन्तु पुनः इन किरणों को पृथ्वी से वापस लौटने में उक्त विषाक्त गैसें बाधा पहुंचाती हैं, इसी से पृथ्वी का तापमान भी बढ़ता जा रहा है। यदि तापमान में निरन्तर वृद्धि जारी रही तो आने वाले वर्षों में विश्व के विशाल हिमखण्ड पिघल जायेंगे। तब समुद्री जल स्तर में भी एक से दो मीटर तक वृद्धि हो सकती है। समुद्री जल स्तर में वृद्धि का सीधा अर्थ है समुद्र के पास नगरों में जीवन के अस्तित्व की समाप्ति। वायुमण्डल को प्रदूषित करने के फलस्वरूप इस भयावह समस्या ने सुरसा के मुख की भांति अपना आकार बढ़ा लिया है।

वायु को प्रदूषित करने का एक और दुष्परिणाम गत वर्षों में हमारे समक्ष भयंकर समस्या के रूप में सामने आया है। वायु प्रदूषण के कारण वायुमण्डल में अनावश्यक रूप से विषाक्त गैसें इकट्ठी होती जा रही है जो वर्षा के पानी में अभिक्रिया कर अम्ल बनाकर वर्षा के पानी को तेजाब में परिवर्तित कर देती हैं जिससे तेजाबी वर्षा होती है। तेजाबी वर्षा एक ओर शुद्ध पीने के पानी में कमी लाती है वहीं इस वर्षा से मनुष्य के शरीर में अनेक प्रकार के रोग भी जन्म ले लेते हैं। यही नहीं तेजाबी वर्षा भूमि की उपजाऊ शक्ति को भी समाप्त करती है। वायु को प्रदूषित करके ही हमने इस भयावह समस्या को जन्म दिया है।

वायुमण्डल में अनावश्यक रूप से इकट्ठा हो रही कार्बन डाइ-आक्साइड, नाइट्रीक ऑक्साइड तथा क्लोरोफ्लोरो कार्बन गैसें ओजोन परत को भी नुकसान पहुंचा रही हैं। पृथ्वी के ऊपरी वायुमण्डल में आक्सीजन गैस के तीन परमाणुओं से मिलकर बना ओजोन मण्डल मानवीय सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है परन्तु वायुमण्डल की उक्त विषाक्त गैसों से आर्कटिक एवं अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन मण्डल में छिद्र हो गया है जो निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। ओजोन मण्डल के इस छिद्र के फलस्वरूप मनुष्य में मोतियाबिन्द, त्वचा कैंसर आदि रोगों में वृद्धि होती जा रही है।

वायु प्रदूषण इतना घातक है कि इससे विश्व की ऐतिहासिक इमारतें भी अछूती नहीं रही हैं। वायु में मिली विषैली गैसों से ही आगरे का ताजमहल, मथुरा के मंदिर, रोम का ट्रोपल स्तम्भ आदि स्टोन कैंसर से पीड़ित होकर अपनी आयु व भव्यता को खोते जा रहे हैं। वस्तुतः वायु प्रदूषण ने मनुष्य के अस्तित्व को ही समाप्त करने का निश्चय कर लिया है। अगर समय रहते इस पर नियन्त्रण नहीं किया गया तो संपूर्ण मानव जाति का जीवन खतरे में पड़ जायेगा, यह अभी भी दृष्टिगोचर हो रहा है।

वायुमण्डल में मिली हानिकारक गैसों से उत्पन्न वायु प्रदूषण की समस्या को नियंत्रित करने का सबसे सुलभ व सही तरीका है पेड़-पौधों की सुरक्षा व अधिकाधिक पेड़-पौधों की स्थापना। चूंकि पेड़-पौधे हानिकारक गैसों का अवशोषण करके प्राण वायु ऑक्सीजन का उत्पादन करते हैं, अतः इनका हमारे स्वस्थ व संतुलित जीवन में विशेष महत्व है। कुल भू-भाग के एक तिहाई भाग पर वन उपलब्ध हों तो वायु प्रदूषण की समस्या से बचा जा सकता है। अतः प्रयास ऐसे किए जाएं कि पेड़-पौधे अधिकाधिक विकसित हों। इसके अलावा औद्योगिक कल कारखानों में अवशिष्ट को नष्ट करने के लिए हानिरहित वैज्ञानिक उपयोगों को प्रयोग में लाना भी नितान्त आवश्यक है। घरेलू ईंधन के रूप में धुएं रहित ईंधन का प्रयोग, नगरीकरण व जनसंख्या नियंत्रण आदि से भी वायु प्रदूषण को काफी हद तक रोका जा सकता है। वायु प्रदूषण ने संपूर्ण जन-जीवन को प्रभावित किया है।अतः अगर इसे रोकने का समय रहते प्रयास नहीं किया गया तो यह हमारे अस्तित्व के समक्ष प्रश्न चिन्ह उत्पन्न कर सकता है, यह अभी से दृष्टिगोचर हो रहा है।

धर्मनगर द्वार के बाहर,
ओझा भवन के पीछे,
बीकानेर-334004
(राजस्थान)

आर्थिक विकास का पर्यावरण पर प्रभाव

✍ डा0 अधिकेश कुमार राय

स्वार्थ से भरा तथा विवेकहीन औद्योगिक विकास मानवीय पक्ष और मानव मूल्यों को रौंदे जा रहा है। ऐसे में भौतिक उपलब्धियों का क्या औचित्य रह जाता है ? वर्तमान प्रगतिशील युग में किसी देश के आर्थिक विकास का मापदण्ड उसकी औद्योगिक संरचना व प्रगति से तय किया जाता है। यही नहीं विकसित, विकासशील व पिछड़े राष्ट्रों का वर्तमान वर्गीकरण बहुत कुछ औद्योगीकरण की मात्रा व प्रगति पर निर्भर है। यही कारण है कि विश्व का प्रत्येक राष्ट्र अपने आर्थिक विकास हेतु सदैव प्रयत्नशील है। विकास उन्नति के लिए है किन्तु पर्यावरण प्रदूषण का आधार भी है। यदि विकास को उन्नति का पर्याय माना जाये तो यह विनाश का कारण अवश्य है। ऐसी परिस्थितियों में विकास का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा क्योंकि विश्व के प्रत्येक देश में पर्यावरण प्रदूषण की काली छाया मंडराने लगी है।

प्रस्तुत आलेख में आर्थिक विकास के द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों को पांच भागों में विभाजित किया है; जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण व भूमि प्रदूषण, प्रदूषण के कारण गंगा का जल अपवित्र हो गया है,वन्य पशु घट रहे हैं, भू-क्षरण के कारण उपजाऊ जमीन बीहड़ों में बदल रही है, निरंतर गति से बढ़ते हुए औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप कारखानों की चिमनियों से निकलने वाली गैस व प्रकृति पर बढ़ रहे लगातार वाहनों के धुंए से ओजोन छतरी में छेद, तेजाबी वर्षा, ग्रीन हाऊस प्रभाव जैसे प्रभाव देखने को मिल रहे हैं, जो मौत का आमंत्रण लेकर मानव समाज के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं ?

अब नियोजकों का यह परम कर्त्तव्य और दायित्व है कि वह विकास के क्रम में पर्यावरण संरक्षण के महत्व को न भूलें। विश्व का अप्रतिम ताजमहल 'ताज' बना रहे इसकी चिन्ता सभी को करनी है, निस्वार्थ होकर।

राष्ट्रीय आय में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जनता के जीवन स्तर में सुधार के साथ साथ मानव का सर्वांगीण विकास आर्थिक विकास कहलाता है। ''आर्थिक विकास की प्रक्रिया दो तीन दशकों के संक्षिप्त काल अंतराल पर केन्द्रित रहती है जबकि अर्थव्यवस्था व समाज इसका अंग होता है। अपनी आकृति को इस तरह बदल देते हैं कि आर्थिक विकास तदनन्तर प्राय: स्वचालित हो जाता है।''

आर्थिक विकास एक प्रकिया है जिसमें चीजों का स्थानान्तरण होता है वे अपने मूल रूप को खोकर कोई नया स्वरुप ग्रहण करती है। अत: स्वभाविक रुप से पर्यावरण के तत्वों में विनियम होता है। ''पर्यावरण उन दशाओं का योग हैं, जो मनुष्य को निश्चित समय में निश्चित स्थान पर आवृत करती हैं।'' पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम 1986 में पर्यावरण के अंतर्गत जल, वायु और भूमि, पौधों व सूक्ष्म जीवों और संपत्ति के परस्पर अन्तर्संबंध को शामिल किया जाता है। वर्तमान में विकास की अवधारणा पर्यावरणविदों की विकास की अवधारणा से भिन्न है। सतत विकास की अपेक्षा आने वाली पीढ़ी के भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति जोखिम में डाले बिना मानव की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हो, अर्थात इसका उद्देश्य धनवानों और गरीबों में संसाधनों का अधिक समान वितरण करना है।'' गरीबी से बढ़कर प्रदूषण का और कोई कारण नही है। ,,

विश्व की समस्याओं का प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता से समाधान किया जा सकता है। विकास की योजनाएं तैयार करते समय पारिस्थितिकीय आयोजना पर सही ढंग से बयान न देने के कारण पर्यावरण संबंधी अनेक समस्याएं पैदा हो गई हैं। आधुनिकता व विकास की दौड़ ने विश्व को ऊर्जा संकट और पर्यावरण प्रदूषण के अंधे कुएं में धकेल दिया है। भारत विकासशील राष्ट्रों की श्रेणी में आता है। अत: विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में शामिल करने के प्रयास में इसका औद्योगीकरण करने हेतु सरकार ने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी है। जिससे प्राकृतिक साधनों का दोहन हो रहा है व इसके विपरीत परिणामों से हम बेखबर हैं।

विकास उन्नति के लिए है, यह पर्यावरण प्रदूषण का भी आधार है, यदि विकास को उन्नति का पर्याय माना जाये तो यह विनाश का कारण अवश्य है। वर्तमान युग में पर्यावरण प्रदूषण की काली छाया प्रत्येक देश में मंडराने लगी है। जंगल तेजी से कट रहे हैं। वन्य पशु घट रहे हैं, भू-क्षरण के कारण जमीन बीहड़ों

में बदल रही है। कल कारखानों में गंदगी से नदियों का जल प्रदूषित हो रहा है, बढ़ते हुए वाहनों के कारण वायु प्रदूषण, ओजोन परत में छिद्र व ग्रीन हाऊस प्रभाव के कारण मानव जीवन व समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

जल प्रदूषण

भारत की नदियों का 70 प्रतिशत जल प्रदूषित है। कारखानें, जल प्राप्ति के सुविधा के कारण नदियों एवं जलाशयों के निकट बनाए जाते हैं। इसके साथ ही उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाले रसायन अवशिष्ट के साथ बहकर आ जाते हैं व जल को प्रदूषित करते हैं। कागज, चर्म शोधन, खनिज, कीटनाशक औषधि निर्माण संबंधी उद्योगों में प्रदूषित जल का बहिस्राव नदियों व जलाशयों को प्रदूषित कर देता है। इस प्रदूषित जल में पारा, शीशा, क्रेडमियम, जिंक क्रोमाईट, मैगनीज का अंश होने के कारण मिनियाता जैसी दुर्घटना को आमंत्रण देता है। आधुनिक फैक्टरियों और कारखानों की वजह से गंगा जैसी पवित्र नदी की गणना विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में हो गई है। जमुना, घाघरा, गोमती नदियों का जल भी विषयुक्त हो गया है। वर्ल्ड हेल्थ आरगेनाइज़ेशन के अनुसार प्रति वर्ष 5 लाख बच्चे जल प्रदूषण के शिकार होते है। भारत में 30 प्रतिशत से 40 प्रतिशत लोग जल प्रदूषण के कारण ही मरते हैं।

वायु प्रदूषण

वायु में ऐसे बाहय तत्व की उपस्थिति जो मनुष्य के स्वास्थ्य व कल्याण के लिए हानिकारक होती हैं वायु प्रदूषण, वायु के भौतिक रसायनिक या जैविक गुणों में ऐसे अवांछित परिवर्तन का द्योतक है जिसके द्वारा मनुष्य व अन्य जीवों की जीवन दशाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। वायु प्रदूषण उद्योगों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं, मोटर गाड़ियों, कोयला व तेल से चलने वाली भट्टियों, पेट्रोल शोधक कारखाने आदि के धुएं से होता है। इससे वायुमंडल में सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन के आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड की मात्रा बढ़ने से वायुमंडल में प्रदूषण होता है। जिसके परिणामस्वरूप आंखों में जलन, फेफड़ों में धूल, रक्त कैंसर आदि की बीमारियां होती हैं। अमेरिका के वर्ल्ड वाच इंस्टीटयूट के अनुसार पिछले 20 वर्षो के दौरान वायुमंडल में बड़ी कार्बन डाइआक्साइड और ताप बढ़ाने वाली गैसों के परिणामस्वरूप ओजोन की रक्षक परत में जगह-जगह छेद नजर आने लगा हैं। बढ़ते हुए धुएं, गैस और राख के कारण 1992 में उत्तरी गोलार्ध में शीत ऋतु इतनी गर्म रही कि ध्रुवों में जमी बर्फ पिघलकर समुद्र का जल स्तर बढ़ाने लगी जिससे समुद्री किनारे की भूमि जलमग्न हो गई है। गैसों के कारण ही वायुमंडल में कोहरा उत्पन्न होता है।

ध्वनि प्रदूषण

यह भौतिक व मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। शांत वातावरण में अशांति, बाधा, क्षुब्धता या घबराहट उत्पन्न करते हैं इसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। इसका मुख्य कारण भारी ट्रक, टेम्पों, बसें, व्यावसायिक संस्थान, विवाह, त्यौहार व धार्मिक पर्वो पर लाउडस्पीकर के उपयोग से तेज आवाज के कारण मनुष्य को मानसिक तनाव उत्पन्न होता है व रक्त चाप बढ़ जाता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण

ऊर्जा के स्रोत के रूप में नाभिकीय ऊर्जा का सहारा लेना पड़ रहा है। रेडियो आइसोटोप्स का उपयोग शोध औषधि निर्माण व उद्योगों में हो रहा है। रेडियोधर्मी विघटन से विद्युत तरंगे निकलती हैं। ये विद्युत तरंगे जैविक दृष्टि से हानिकारक हैं। इससे कैंसर आदि रोग उत्पन्न होते हैं। जब परीक्षण हेतु बम गिराये जाते हैं तो रेडियोधर्मिता निकलती हैं। यह धूल पत्तियों पर जम जाती है जो पर्यावरण के लिए व पशुओं के लिए हानिकारक हैं। 1986 में सोवियत संघ में चेरनोबिल के अणुशक्ति गृह से रेडियोधर्मी तत्वों के रिसाव से सारा यूरोप आतंकित हो गया जिससे कैंसर का प्रकोप बढ़ने लगा। ऊर्जा के लिए बनाए गए ताप बिजली घरों में जलने वाले कोयले से वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ती हैं जो एक सीमा से अधिक होने पर अत्यंत घातक सिद्ध हो सकती हैं। इसमें सल्फर की मात्रा होने से एसिड की वर्षा होती है जो वनों और फसलों को नष्ट कर देती हैं।

भूमि प्रदूषण

भूमि प्रदूषण व जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण के कारणों से होता है। अधिक उत्पादन के लिए प्रयोग किए गए रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाइयां भूमि की उर्वरा शक्ति कम करते हैं। कल-कारखानों के अवसाद, कांच के टुकड़े, टीन के डब्बे, पोलीथिन की थेलियां आसानी से विघटित नही होते जिस के कारण भूमि अनुपयोगी हो जाती है। वनों के भारी मात्रा में विनाश के कारण वन्य जीवों और वनस्पतियों का ह्रास बड़ी तेजी से होने लगा है। एक वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार सन् 2020 तक विश्व की

शेष पृष्ठ 14 पर

गांवों में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या

✍ विजय शंकर

विश्व में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या काफी पहले से रही है लेकिन पिछले आठ दस वर्षो से इसका जो भयावह और विनाशकारी रूप सामने आया है उसने पूरी मानव जाति की चेतना को झकझोर दिया है। विकास के नाम पर मनुष्य ने पृथ्वी को जिस तरह से रौंदा है, उसकी प्राकृतिक संपदा का जिस बेरहमी से दोहन किया है, उसके भावी दुष्परिणामों से अब वह स्वयं त्रस्त है। इसीलिए इन दुष्परिणामों के कारणों को समझने और उनके निवारण के लिए अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर सम्मेलनों और गोष्ठियों के अनेक आयोजन हुए हैं और हो रहे हैं। इस संबंध में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव भी आये हैं, कानून भी बने हैं लेकिन उन पर कारगर ढंग से अमल नहीं हो रहा है। इसीलिए समस्या लगातार गहराती जा रही है।

महानगरों और अनेक शहरों में यह समस्या खतरे के बिंदु तक पहुंच गयी है लेकिन आश्चर्य और चिंता की बात तो यह है कि गांव जो इससे अछूते थे, वे भी पर्यावरण प्रदूषण की चपेट में आ गये हैं। गांवों में पर्यावरण प्रदूषण का एक मुख्य कारण वनों, पेड़ पौधों और यहां तक की बाग बगीचों की अंधाधुंध कटाई है। इससे गांव अपनी मूल पहचान खो रहे हैं। यह सही है कि आज हम प्राचीन आश्रम व्यवस्था अथवा उन पुरानी समाज व्यवस्थाओं को नहीं अपना सकते जिसमें लोग वनों और प्रकृति की गोद में तालमेल से रहते थे। तब आबादी कम थी और वनों में बहुत कुछ उपलब्ध था जिससे लोग जीवन-यापन कर लेते थे। जमीन भी पर्याप्त थी जिससे हम वनों के कंदमूल आदि फल फूल के अलावा अन्न का उत्पादन भी कर लेते थे। आज वह स्थिति नहीं है। इसके बावजूद कम से कम इतना तो कर सकते हैं कि विकास और प्रकृति के बीच एक संतुलित और विवेक-सम्मत दृष्टिकोण अपनाकर उस पर अमल कर सकते हैं। इसलिए हमें गांवों को फिर से हरा-भरा बनाने और उन्हें प्रदूषण से मुक्त करने के लिए योजनाबद्ध तरीके से और बड़े पैमाने पर पर्वतीय, तटीय और मैदान के गांवों में वन, बाग बगीचे और पेड़ पौधे लगाने को तरजीह देनी होगी। मवेशियों के चरागाह के लिए फिर से ज़मीन छोड़नी होगी जिससे गांव अपनी पुरानी पहचान को फिर से प्राप्त कर सकें। इसके लिए सरकार की तरफ से भी कई योजनाएं चलायी जा रही हैं लेकिन जब तक गांवों के प्रबुद्ध और उत्साही लोग आगे नहीं आते, तब तक हम इस दिशा में अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं कर सकते।

पर्यावरण को प्रदूषित करने में हमारी तेजी से बढ़ती जनसंख्या भी एक बड़ा कारण है। जनसंख्या वृद्धि के कारण अधिक आवास और रोजगार की समस्या पैदा होती है जिसके लिए मकान और उद्योग धंधे लगाने की जगह के लिए वनों की कटाई की जाती है अथवा कृषि योग्य भूमि इसके लिए काम में लायी जाती है। इसका पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ता है। अब तो कुटीर उद्योग धंधों के अलावा गांवों के आसपास भी कई बड़े कल-कारखाने खुलने लगे हैं जिनका कूड़ा कचरा और विषैले तरल पदार्थ पास के नदी नालों और जलाशयों में गिरने लगे हैं जिनसे इनका पानी विषैला होता जा रहा है। यह मानव स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डालता है। इसके साथ ही इनमें पलने वाली मछलियां भी तेजी से खत्म होती जा रही हैं। लाशों को जलाने की सुविधा न होने के कारण अनेक लोग इन्हें नदियों और नहरों में बहा देते हैं जिससे पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या पैदा हो जाती है। इसलिए जनसंख्या के दबाव को कम करने के लिए सरकार स्वयंसेवी संस्थाओं और जागरूक लोगों को संयुक्त रूप से तालमेल के साथ काम करना होगा। जनसंख्या वृद्धि के खतरों से खास तौर पर अशिक्षित पिछड़े और निर्धन वर्ग को आगाह करना होगा तभी हम पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचा सकते हैं।

गांवों में प्रदूषित पानी का इस्तेमाल आम बात है। विकसित देशों में अधिकांश रोगों का संबंध पानी से होता है। आजादी के 46 वर्षो के बाद भी हम देश के समस्त गांवों तक स्वच्छ पेयजल पहुंचाने में विफल रहे हैं, आज भी गांवों की खासी आबादी कुओं, तालाबों, नदियों और शहरों का प्रदूषित जल पीने के लिए विवश है। इस जल में हानिकारक रसायनों की बहुलता, खारापन और फ्लोराइड आदि का होना आम बात है। नदियां और नहरें तो दूषित रहती ही हैं, कुएं और तालाब भी उचित रखरखाव के अभाव में प्रदूषित हो गये हैं। तालाबों, नहरों तक दूसरे जलाशयों में लोग कूड़ा कचरा विषैले तरल पदार्थ और कभी कभी तो जानवरों के शव डाल देते हैं जिससे जल प्रदूषित हो जाता है। कुओं के आसपास एकत्रित पानी सड़ जाता है जिसमें

तरह-तरह के विषैले कीटाणु पैदा हो जाते हैं जो स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।

गांवों में वायु प्रदूषण मुख्य रूप से शौचालयों के अभाव तथा धुआंरहित चूल्हों की कमी के कारण होता है। शौचालयों के अभाव के कारण लोगों को सुबह शाम सड़कों, पगडंडियों, रेलमार्गों, नदियों, नहरों और तालाबों के आसपास शौचक्रिया करते हुए देखा जा सकता है। इससे आसपास का समूचा पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है जिससे कई घातक बीमारियां पैदा होती हैं। गांवों में खासतौर से पिछड़े, अनुसूचित और अनुसूचित जन जाति के लोगों को आवास तथा शौचालयों की सस्ती और आधुनिक प्रणाली को उपलब्ध कराके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। इस सिलसिले में सिर पर मैला ढोने की अमानवीय प्रथा को पूरी तरह समाप्त करने तथा उन लोगों के रोजगार की वैकल्पिक व्यवस्था के भी प्रावधान किए जा रहे हैं। इसके अलावा गांवों में धुंआ रहित चूल्हे भी वायु प्रदूषण को कम करते हैं। गांवों में आज भी मिट्टी के परम्परागत चूल्हों से काम लिया जाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी यह होती है कि जलावन का अधिक इस्तेमाल होता है और धुंआ निकलने की समुचित व्यवस्था नही होती। बरसात के दिनों में और खासतौर पर जब लकड़ी और उपले पूरी तरह सूखे नहीं होते तब तो यह समस्या और भी बढ़ जाती है। कई बार तो रसोईघर के अलावा दूसरे कमरों में भी धुंआ भर जाता है और सांस लेने में कठिनाई होती है। इसलिए ग्रामीणों को धुएं के माहौल में लगातार काम करने से खासतौर पर महिलाओं में फेफड़ों और आंखों की अनेक बीमारियां हो जाती हैं। इसलिए ग्रामीणों को धुआंरहित और उन्नत किस्म के चूल्हों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त गांवों में गंभीर ऊर्जा संकट के हल के लिए बायो गैस उत्पादन और उसके वितरण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

दरअसल पर्यावरण प्रदूषण के बढ़ते खतरों को देखते हुए इसके निवारण में अब किसी प्रकार की उपेक्षा और लापरवाही आत्मघाती साबित होगी। अक्सर यह देखा जाता है कि सरकार ग्रामीण विकास के लिए जब भी कोई कार्यक्रम बनाती है उसमें पर्यावरण प्रदूषण की समस्या पर पर्याप्त ध्यान नही दिया जाता। सरकार को इस सिलसिले में अब निश्चित रूप से अपना नजरिया बदलना होगा और समस्या का उचित मूल्यांकन करके इसके क्रियान्वयन के लिए कारगर कदम उठाने होंगे। इसमें सरकार, अधिकारियों और जन प्रतिनिधियों को तालमेल से काम करना होगा। लेकिन इससे भी जरूरी है कि पर्यावरण प्रदूषण के खतरे से निपटने के लिए इसे एक जन आंदोलन बनाना। लोगों के अंदर पर्यावरण के प्रति एक जनजागरूकता और चेतना पैदा करना। ग्रामीण स्तर पर पर्यावरण कार्यक्रमों को कारगर ढंग से चालू करने के लिए हमें अनेक प्रयास करने होंगे। सभी स्तरों पर इससे जुड़े लोगों को सक्रिय करना होगा। इसके लिए कुशल ईमानदार और समर्पित लोगों को आगे आना होगा जो मिलकर इस जिम्मेदारी को पूरा करें। इसमें स्वैच्छिक और गैर सरकारी संगठन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

ए-12, एंड्रयूजगंज एक्सटेंशन,
नई दिल्ली-110 049

लेखकों से अनुरोध

''कुरुक्षेत्र'' के लिए मौलिक लेख, लघु कथा, हास्य व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में पत्र-व्यवहार न करें। सभी रचनाएं सम्पादक कुरुक्षेत्र, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली 110001 के पते पर भेजें।

जहरीली होती मृदा की सांसें

✍ राजेश हजेला

भारतीय मानस सदैव से अपने पर्यावरण के प्रति सचेत एवं सचेष्ट रहा है। भारतीय मनीषियों के वैदिक काल से अब तक के समस्त वाङ्मय में पर्यावरण के प्रति पर्याप्त जागरूकता दिखाई देती है। भारतीय मनीषियों ने पंचतत्व की शुद्धि पर सदैव बल दिया है -

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिराप:

शान्तिरोषधय: शान्ति:। वनस्पतय: शांतिर्विश्वे देवा:

शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्ति:सा

मा शान्तिरेधि ॥ ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[द्यु लोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी सभी शान्ति एवं कल्याण देने वाले हो। सभी जल औषधियां और वनस्पतियां हमें सुख-शांति प्रदान करें। सभी देवता, परब्रह्म परमेश्वर और सभी सम्मिलित रूप से शांति देने वाले हों। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की शान्ति हो। वह शांति हममें सदैव वृद्धि को प्राप्त हो]

- स्वस्ति वाचन मन्त्रों से

मां हमें जन्म देती है हम मृदा में पलकर बड़े होते है, इसकी सोंधी सुगन्ध हमारे रोम- रोम में परमात्मा की तरह व्याप्त है। मृदा जीवन-प्रदायिनी है। हम इसके उपकार से कभी उऋण नहीं हो सकते। कहा भी गया है-

समुद्र वसने देवि! पर्वतस्तने मण्डले।

विष्णु पत्नि! नमस्तुभ्यं पाद स्पर्शम् क्षमस्व में॥

[हे (मातु) भूमि देवि! (जिसकी रक्षा स्वयं विष्णु (पतिरूप में) करते हैं) मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। हे सागर रूपी परिधानों और पर्वत रूपी वक्ष-स्थल से शोभायमान धरती माता! मुझे चरणों से स्पर्श के लिए क्षमा करो]

-भारत भक्ति स्त्रोत्रम्

इन मन्त्रों में सम्पूर्ण पर्यावरण को शुद्ध एवं सुखद बनाने की कामना की गई है किन्तु आज से मंत्र अपनी अर्थवत्ता को खो चुके हैं। अतिशय बुद्धिवाद की प्रचण्डता ने मानव-हृदय से उक्त-भाव तिरोहित कर दिये हैं, फलस्वरूप वह सब कुछ अपने अधिकार में करने हेतु बावला है। परिणाम ? प्रकृति के पावन-स्वरूप को प्रदूषण का राहु क्षण-प्रतिक्षण अपने विपाक्त पंजों में निष्ठुरतापूर्वक दबोचता जा रहा है।

आज का मनुष्य स्वार्थवश इतना व्यवसायिक हो चुका है कि वह भावी पीढ़ी की चिन्ता किए बिना वर्तमान काल में ही सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं का उपयोग करना चाहता है। परिणाम सामने है। आज न पृथ्वी शुद्ध है, न वायु, न ही जल शुद्ध है। प्राचीनकाल से ही मिट्टी को शुद्धिकारक माना गया है। पुरातन ग्रन्थों में हाथ धोने के लिए और यहां तक कि नहाने के लिए भी मिट्टी को उपयुक्त बताया गया है। आज मिट्टी का वह स्वरूप नष्ट हो गया है। कृषि कार्य में भी मिट्टी निरन्तर तत्वहीन होती जा रही है। मिट्टी में उर्वरक तत्व निरन्तर ह्रासमान हैं।

मिट्टी का उपयोग मुख्यत: कृषि के लिए होता है। इसमें या तो मौलिक रूप से उर्वर तत्व होते हैं अथवा इन तत्वों को कृत्रिम रूप से समाविष्ट किया जाता है किन्तु जब मिट्टी में कुछ अनुपयोगी या विकृतिकारक तत्व मिल जाते हैं तो कृषि कार्य के लिए मिट्टी की उपयोगिता क्षीण हो जाती है। इस विकृति को हम मृदा प्रदूषण का नाम देंगे। लगभग सभी विद्वानों ने मृदा प्रदूषण का यही तात्पर्य स्वीकार किया है। डा0 शिव गोपाल मिश्र के अनुसार - "कोई भी ऐसा पदार्थ, चाहे सजातीय हो या विजातीय, जो मृदा-तन्त्र में मिलकर भूमि की उत्पादकता को प्रभावित करे, मृदा-प्रदूषक कहलाता है। प्रदूषकों के कारण उत्पन्न स्थिति, जो सामान्य से भिन्न होती है, प्रदूषण कहलाती है।" जब भौतिक या मानवीय कारणों से मृदा की गुणवत्ता घटने लगती है तो उसे मृदा का ह्रास कहा जाता है। यह ह्रास मृदा के कटाव, अधिक उपयोग से पोषक तत्वों की कमी, तापमान का घट-बढ़, जैवांश का असन्तुलित अनुपात और प्रदूषकों के मिश्रण से उत्पन्न होता है। कोई भी पदार्थ जो मिट्टी में मिलकर उसकी उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, उसे मृदा प्रदूषक कहेंगे।

डा0 बी0एल0 शर्मा के अनुसार- "मिट्टी के विनाश में मानवीय क्रियाकलाप भी किसी तरह कम नहीं होते। मानव स्वयं

मिट्टी के शोषण में बहुत बड़ा कारक है। वह अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धरातल पर मिट्टी का विभिन्न रूप से उपयोग कर उनसे उत्पादन के रूप में अपने साधन जुटाता है व इनका हनन करता है।'' अत: स्पष्ट है कि मृदा के सामान्य गुण को अनुपयोगी एवं विकृत करने वाले तत्व ही उसे प्रदूषित करते हैं।

मृदा प्रदूषण के सबसे बड़े कारक कीटनाशक और रासायनिक उर्वरक हैं। इनके प्रयोग से फसलों का उत्पादन तो बढ़ जाता है परन्तु इनमें निहित तत्व मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देते हैं तथा उसके तापमान को प्रभावित कर उसके पोषक तत्वों से रासायनिक प्रक्रिया करके उसकी गुणवत्ता को भी नष्ट कर देते हैं। एक अनुमान के अनुसार 1965-66 में विश्व में लगभग 2503 अरब टन कीटनाशक तत्वों की खपत थी जो 1980 में बढ़कर 4155 अरब टन हो गई। कीटनाशक पहले कीड़ों को मारते हैं और फिर मृदा की गुणवत्ता विनष्ट करने के बाद फसलों में पहुंचते हैं। इसीलिए इन्हें रेंगती मृत्यु कहना अनुचित नहीं है।

कीटनाशकों का प्रयोग करते-करते भूमि स्वयं को उसी तरह ढाल लेती है। जिससे उनका प्रयोग बन्द होने पर वह अपनी अवरोध क्षमता खो देती है तथा आगामी कई वर्षों में अपनी पूर्व क्षमता को वापस प्राप्त कर पाती है। कीटनाशकों का जिस वर्ष उपयोग न किया जाये या कम उपयोग हो तो उत्पादन उसी मात्रा में घटता भी जाता है और एक समय मिट्टी बिल्कुल उत्पादन नहीं देती है। यह कहिए कि बांझ हो जाती है और उसमें खारापन बढ़ जाता है।

डी0डी0टी0 तथा अन्य रासायनिक तत्व मृदा में समाविष्ट होकर उसकी सतह तक पहुंच जाते हैं और मृदा की उत्पादन क्षमता को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा ये तत्व वनस्पतियों तथा सब्जियों में प्रविष्ट होकर मनुष्य के शरीर में पहुंचते हैं। छिड़काव के लिए प्रयुक्त डी0डी0टी का 75 प्रतिशत मिट्टी में गिर जाता है और वहीं वह संचित होता रहता है। इस डी0 डी0 टी0 से मिट्टी में रहने वाले अनेक जीव नष्ट हो जाते हैं। पारा तथा सोडियम मिट्टी में संचित होते हैं। ये तत्व मृदा की ऊपरी सतह में एकत्र होते हैं जिनका प्रभाव वनस्पति एवं जीवों पर पड़ता है।

वन सदैव से हमारे पोषक तथा हमारी संस्कृति के प्रतीक रहे हैं लेकिन मनुष्य उनका अनियंन्त्रित दोहन कर मृदा प्रदूषण को बढ़ावा दे रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार अगले बीस-वर्षों में संसार भर की कृषि योग्य भूमि का लगभग एक-तिहाई भाग नष्ट हो जाएगा। यदि जंगलों का कटाव न रोका गया तो दिल्ली भी रेगिस्तान में बदल जायेगी क्योंकि रेगिस्तान राजधानी की ओर बढ़ रहा है।

प्रकृति से प्राप्त संसाधनों के अत्याधिक शोषण से भूमि की गुणवत्ता में निरंतर कमी परिलक्षित हो रही है जिससे उत्पादन क्षमता में गिरावट आ रही है और आगामी समय में इसके गम्भीर परिणाम होंगे। भोजन, रेशा या आवश्यक वस्तुओं को पैदा करने वाली जमीन पहली योजना के आरम्भ में प्रति व्यक्ति 0.33 हेक्टेयर से 9वीं योजना के अन्त सन् 2000 तक घटकर 0.29 हेक्टेयर हो जाएगी। स्थिति इसी तरह बिगड़ती रही तो प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पादन की औसत जो अब तक 0.26 प्रति हेक्टेयर है आगे इससे भी कम हो सकता है।

मृदा अपक्षरण का प्रमुख कारण वनों का विनाश है। वृक्ष मृदा को बांधने का कार्य करते हैं। वृक्षों के न होने से मृदा के बहाव की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा ऊपर की मिट्टी बह जाती है एक अनुमान के अनुसार किसी जमीन से वनों का सफाया हो जाने पर उसकी ऊपजाऊ मिट्टी की हानि पहले की तुलना में चार सौ गुना अधिक बढ़ जाती है। भारत में भूमि कटाव एक गम्भीर समस्या है। एक हेक्टेयर जमीन से लगभग 16.35 टन मिट्टी प्रतिवर्ष बह जाती है। इस प्रकार 533.4 करोड़ टन मिट्टी भारत के पूरे क्षेत्रफल से प्रतिवर्ष बह जाती है।

औद्योगिक अपशिष्ट भी मृदा प्रदूषण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। ये नगरीय क्षेत्रों में व्यापार तथा औद्योगिक क्रियाओं के फलस्वरूप अपशिष्ट के रूप में प्लास्टिक, कूड़ा-करकट, कागज, रबड़, कांच तथा धातु इत्यादि में परिवर्तित होकर निकलते हैं जिससे मिट्टी प्रदूषित हो जाती है तथा उसकी उर्वरा शक्ति समाप्त हो जाती है। भारत के महानगरों में ठोस व्यर्थ पदार्थों के निष्कासन में बम्बई प्रथम स्थान रखता है। यहां प्रतिदिन 3000 टन से भी अधिक ठोस व्यर्थ पदार्थ तथा 2500 टन से भी अधिक तरल पदार्थ निकलते हैं। दिल्ली (2100टन), मद्रास (1200 टन), बंगलौर (1000 टन), कानपुर (850 टन), लखनऊ (700 टन) और चंडीगढ़ (300 टन) क्रमश: तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें और आठवें स्थान पर है। अनुमान है कि सन 2001 तक इन नगरों से ठोस व्यर्थ पदार्थों का निस्तारण लगभग डेढ़ गुना हो जायेगा।

मृदा प्रदूषण के कारकों में एक अन्य प्रमुख कारक रेडियो सक्रिय अपशिष्ट पदार्थ है। यह कारक परमाणु बमों के विस्फोटों व परीक्षण द्वारा, परमाणु बिजलीघरों के व्यर्थ कचरे द्वारा तथा

परमाणु संयंत्रों में रिसाव से उत्पन्न होता है। प्राकृतिक यूरेनियम, अयस्क के खनन से लेकर सम्पूर्ण नाभिकीय ईंधन-चक्र से होने वाले परिवर्तनों की अवधि में अत्याधिक घातक रेडियो सक्रिय पदार्थ बड़ी मात्रा में बनते है। ऐसा देखा गया है कि धूल-कणों के रूप में स्ट्रान्शियम मिट्टी की सतह पर संचित होता है, किन्तु यदि विलयन में से अवसाद द्वारा स्ट्रान्शियम ग्रहण होता है तो उसकी सान्द्रता में 90 गुनी वृद्धि हो जाती है अत: जलोढ़ मिट्टी सक्रिय रेडियो आइसोटोप ग्रहण करके घातक बन सकती है।

मृदा प्रदूषण प्रमुख जटिलतम समस्याओं में से एक है जिसे रोकना आज की परिस्थितियों में अपरिहार्य हो गया है। भारत सरकार का पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, केन्द्रीय पर्यावरण निदेशालय, गंगा परियोजना निदेशालय, राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड, विश्व पर्यावरण तथा विकास आयोग, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम तथा अनुसंधानिक स्तर पर अभियांत्रिकी और ग्रामीण प्रौद्योगिकी संस्थान (आई0इ0आर0टी0), इलाहाबाद, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, राष्ट्रीय पर्यावरणीय अभियांत्रिकी संस्थान, नीरी जैसे महत्वपूर्ण संस्थान कार्यरत हैं लेकिन ये सब संस्थान स्वयं कार्य नहीं कर सकते केवल परियोजनाओं की शुरुआत कर सकते हैं; उन्हें प्रोत्साहित कर सकते हैं तथा उनकी समीक्षा कर सकते हैं। इन सब कार्यों को सम्पादित करने का कर्तव्य तो हमारा है जो हमें करना होगा। भूमि के समन्वित उपयोग, जल संसाधनों की उचित व्यवस्था, जैविक विच्छेदन की क्रिया, कीटनाशकों के प्रयोग पर नियंत्रण, रासायनिक उर्वरकों का सन्तुलित उपयोग, कूड़े-करकट को जलाकर उसके कम्पोस्ट खाद बनाकर, बायो गैस बनाकर तथा अम्लीय मिट्टी में चूने का प्रयोग करके नाभिकीय विघटन उत्पाद स्ट्रान्शियम के अवशोषण पर रोक इत्यादि उपायों द्वारा मृदा प्रदूषण की बढ़ती विभीषिका में कमी ला सकते हैं।

4/10, तकिया नशरत शाह
फर्रुखाबाद (उ0प्र0) 209625

पृष्ठ 9 का शेष

लगभग एक करोड़ जैव व वनस्पति प्रजातियों में से 10 से 20 प्रतिशत समाप्त हो जायेगी जिन्हें पुन: जीवित करना संभव नहीं। धरती का वातावरण इस बढ़ते हुए तापमान के कारण प्रभावित हो रहा है। इसमें ग्रीन हाऊस प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वनों की कटाई के कारण ही मनुष्य द्वारा छोड़ी गई कार्बन डाइआक्साइड गैस की पेड़ों द्वारा शोधन की क्षमता घटी है वही मनुष्य को प्राप्त होने वाली आक्सीजन की कम मात्रा वातावरण में उपलब्ध होने लगी है। वृक्ष कटने के कारण नदियों में बाढ़ आने से नदी घाटियों की उपजाऊ मिट्टी पर की गई खेती बरबाद हो जाती है।

पर्यावरण संरक्षण

विकास को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण की सुरक्षा को नकारा नहीं जा सकता पश्चिमी देशों के अनियंत्रित औद्योगिक विकास की योजनाओं के लिए प्राकृतिक सम्पदाओं का जो असीमित विनाश हुआ है उसका भुगतान भारत जैसे विकासशील देशों को करना पड़ रहा है। हम पश्चिमी देशों की नकल कर औद्योगिक विकास की गति को मंद नहीं कर सकते केवल आवश्यक यह है कि विकास सुनियोजित हो जिससे पर्यावरण पर कम से कम विपरीत प्रभाव की सम्भावना रहे।

सहायक प्राध्यापक
शास. स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म0प्र0)

वन विनाश एवं उसके दुष्परिणाम

✍ गणेश कुमार पाठक

वन किसी भी देश के पर्यावरण का एक प्रमुख अंग है। यह मानव की महत्वपूर्ण प्राकृतिक सम्पदा है, जिस पर न केवल हमारा पर्यावरण निर्भर है, बल्कि इससे उद्योगों के लिए कच्चा माल एवं अनेक साधन भी उपलब्ध होते हैं। इसके बावजूद भी कभी अज्ञानतावश, तो कभी जान-बूझकर, मानव द्वारा वनों की कटाई अधिक मात्रा में की गई। तो कभी जनसंख्या वृद्धि के कारण वनों को काट कर कृषि के लिए भूमि उपलब्ध की जाती रही है। सदियों से मकान बनाने के लिए पुलों तथा नावों के निर्माण के लिए, इमारती समान के लिए, घरों एवं कारखानों में ईंधन के लिए, पशुपालन के लिए विश्व भर में वन काटे जा रहे हैं। मनुष्य ने केवल वही भूमि वनों के लिए छोड़ी है जो कृषि या अन्य उपयोग में नही आ सकती। प्रारम्भ में जहां पृथ्वी के 70 प्रतिशत भू-भाग अर्थात 12 अरब 80 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में वन थे, वहीं आज केवल 16 प्रतिशत भू-भाग यानी 2 अरब हेक्टेयर क्षेत्र ही वनों से आच्छादित है।

इस प्रकार हमारे वनों पर गत शताब्दी में जिस बेरहमी से हमला हुआ है और उसका जितना विनाश किया गया है उतना शायद ही किसी दूसरे अंग का किया गया हो। वन विभाग द्वारा प्रसारित अधिकृत आंकड़ों के अनुसार सन् 1951 और 1972 के बीच नये खेतों, सड़कों और उद्योगों के कारण देश को 34 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र खोना पड़ा है। यानी वन विनाश की वार्षिक दर डेढ़ लाख हेक्टेयर रही है। लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि इस समय हर साल लगभग 10 लाख हेक्टेयर वन काटे जा रहे हैं। राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजन समिति की एक रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है कि देश का लगभग 12 प्रतिशत भू-भाग ही पर्याप्त हरियाली से आच्छादित है।

इस तरह विगत दशकों में अनवरत वन विनाश के कारण न केवल वर्षा की मात्रा भूमिगत जल के स्तर एवं जल स्रोतों में कमी आई है, अपितु इसके चलते बाढ़, सूखा, भू-स्खलन, भू-क्षरण एवं अन्य पारिस्थितिकी विक्षोभों में भी क्रमश: वृद्धि होती जा रही है।

वन विनाश के कारण

भौतिकवादी सभ्यता के आज के युग में वनोत्पादों की मांग बढ़ी है, फलत: वन भी तेजी से लुप्त हो रहे हैं। कहीं कृषि विस्तार के लिए, तो कहीं नदी घाटी परियोजनाओं द्वारा सिंचाई या विद्युत के लिए तो कहीं शुद्ध व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए बड़े-बड़े वन क्षेत्र साफ किए जा रहे हैं। प्रतिदिन लाखों वृक्ष मानव की प्रगति की अन्धी दौड़ के शिकार होते जा रहे है। इस प्रकार विश्व भर में वन क्षेत्र दिन प्रतिदिन संकुचित होते जा रहे हैं। वन विनाश के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

सरकार की दोषपूर्ण वन नीति

वर्तमान वन विनाश संकट का बीज अंग्रेजों द्वारा बनाई गई संकीर्ण वन नीतियों में छिपा है। उनकी दृष्टि भारत के वनों से अधिक से अधिक राजस्व कमाने भर की थी दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के बाद भी वन विभागों के सामने वही व्यावहारिक दृष्टि मुख्य बनी रही, जो ब्रिटिश सरकार द्वारा सन् 1865 में लागू फोरेस्ट एक्ट में थी। इस एक्ट में कृषि को वन के ऊपर प्राथमिकता दी गई। इसके पश्चात सन् 1879 में वन अधिनियम के तहत वनों के तीन वर्ग निर्धारित किए गए (1) आरक्षित वन - ये वन सरकार के पूर्णतया अधीन माने गए, (2) संरक्षित वन- इसमें स्थानीय निवासियों के अधिकार को महत्व प्रदान किया गया, (3) ग्राम्य वन- इसमें सबको वनोत्पाद के उपयोग की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई। इस तरह इस प्रक्रिया के अन्तर्गत वनों को मनमाने रूप में काटा जाने लगा। सन् 1927 में चार संशोधन करके भारतीय वन अधिनियम लागू किया गया, जिसके अंतर्गत सरकार को आरक्षित एवं अन्य वनों से लकड़ी एवं वन उत्पाद लेने पर शुल्क वसूलने की व्यवस्था थी। स्वतंत्रता के पश्चात सन् 1952 में "राष्ट्रीय वन नीति" घोषित की गई। इस नीति के अनुसार वनों से अधिकतम आय प्राप्त करना सरकार का मुख्य ध्येय हो गया।

सरकार की वन नीति के चलते ही 1950 से 1981 के मध्य कृषि फसलों के अंतर्गत क्षेत्र 1187.5 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 1429.4 लाख हेक्टेयर हो गया। कृषि फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल में हुई 242 लाख हेक्टेयर की यह वृद्धि ग्रामीण अंचल में स्थित वृक्षाच्छादित भूमि को वृक्षविहिन करके प्राप्त की गई और वर्तमान स्थिति यह है कि भू-उपग्रहों से खींचे गए चित्रों के अनुसार हमारे देश में लगभग 350 लाख हेक्टेयर अर्थात कुल राष्ट्रीय क्षेत्रफल का लगभग 11 प्रतिशत भाग ही वनाच्छादित रह

गया है। यह लगभग उतना ही है, जितना वर्ष 1950-51 में आरक्षित वन क्षेत्र राज्य सरकारों के वन विभागों के नियंत्रण में था।

अनियंत्रित पशुचारण :

विश्व खाद्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार "हमारे देश में चराई की समस्या बड़ी विकट है। 1975 में कुल विश्व पशुधन का 15 प्रतिशत भारत में था इसमें 46 प्रतिशत भैंस, 17 प्रतिशत बकरियां, 15 प्रतिशत गाय एवं 4 प्रतिशत भेड़ें थीं। भारत के पहाड़ी इलाकों में काफी चराई होती है। लगातार चराई और छटाई होते रहने के कारण हिमालय के जंगलों का एक बहुत बड़ा भाग बस अब मामूली किस्म की झाड़ियों का इलाका बनकर रह गया है। इसके साथ-साथ पशुओं के पैरों से रौंदे जाने के कारण उपजाऊ धरती कड़ी हो चली है। अत: दुबारा जंगल उठने की स्थिति नहीं रही है और इस कारण अनेक भू-भागों में भू-क्षरण बढ़ रहा है।"

स्थानान्तरणशील अथवा झूम खेती:

झूम खेती के कारण विश्व में उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के वनों का तीव्रगति से विनाश होता जा रहा है। झूम खेती की इस पद्धति में किसी क्षेत्र विशेष की समस्त वनस्पति काटकर जला दी जाती है। वनस्पति दहन से उत्पन्न राख में उपस्थित अनिवार्य खनिज मृदा में मिलाकर उसकी उत्पादकता में वृद्धि करते हैं। इस प्रकार समृद्ध मृदा में दो या तीन फसलें और ली जाती हैं। जब उर्वरकता घटने लगती है तो कृषक उस क्षेत्र को छोड़कर नये क्षेत्र साफकर वहां भी इसी प्रकार फसल प्राप्त करते हैं। इस प्रकार समय-समय पर 'स्लेश' या 'बर्न' विधि द्वारा खेती करने की इस पद्धति को 'स्थानान्तरी जुताई' या 'झूम खेती' कहा जाता है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में 3 करोड़ वर्गमील क्षेत्र में बसने वाले 20 करोड़ आदिवासी लोग इसी पद्धति से खेती करते हैं।

भारत के उत्तरी पूर्वी राज्यों में विशेष तौर से झूम खेती की जाती है जिससे 15 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र प्रभावित है। उत्तरी पूर्वी राज्यों के कुल क्षेत्रफल का 5.4 प्रतिशत भू-भाग स्थानान्तरणशील कृषि से प्रभावित है। भारत में झूम खेती का प्रभाव लगभग 95 लाख हेक्टेयर वन भूमि पर पड़ता है। 'झूम खेती' से प्रतिवर्ष 4,53,000 हेक्टेयर क्षेत्र प्रभावित होगा है।

वनों में आग लगना :

समय-समय पर मनुष्य की लापरवाही अथवा अन्य किसी कारणवश वन क्षेत्र में लगने वाली आग से वन संसाधनों को अत्याधिक क्षति पहुंचती रही है। वनों में कई तरह से आग लगती है। एक तरह की आग भूमि की सतह पर लगती है। जिससे बड़े वृक्षों को कोई विशेष हानि नहीं पहुंचती है। किन्तु इस तरह की आग से मिट्टी को प्राप्त होने वाले जैव पदार्थ नष्ट हो जाते हैं एवं वातावरण को भी नुकसान पहुंचता है। वनों में लगने वाली दूसरी प्रकार की आग को "शीर्षाग्नि" कहा जाता है। यह आग वृक्षों की पत्तियों एवं डालों को जलाती हुई हवा के सहारे तीव्र गति से फैल जाती है और यदि किसी तरह से इसे रोका नहीं गया तो इससे सम्पूर्ण वन क्षेत्र जलकर राख हो जाता है। इस आग से वन्य जीव समुदाय भी चपेट में आ जाते हैं। वन क्षेत्रों में लगने वाली तीसरी तरह की आग को 'मृतिका अग्नि' कहा जाता है। इससे आग से मिट्टी में निहित सभी तरह के जैव पदार्थ जल जाते हैं। इससे तात्कालिक क्षति तो होती ही है। भविष्य में भी दीर्घ अवधि तक पेड़ पौधों के उगने की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि इस तरह की आग से मिट्टी निर्माण की प्रक्रिया ही भंग हो जाती है और इसे पुनर्स्थापन होने में लम्बी अवधि लग जाती है।

बांध एवं सड़क निर्माण :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बांध एवं निर्माण में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। बांधों के निर्माण के फलस्वरूप इन बांधों के पीछे जलाशय में विस्तृत वन क्षेत्र जलमग्न होकर सदा के लिए समाप्त हो गये। सन् 1951-71 के मध्य कुल 4 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र जलाशयों में निमग्न हो गए। पहाड़ी क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण के फलस्वरूप पहाड़ी ढलान काटे गए, जिनसे वन क्षेत्र को क्षति पहुंची है। साथ ही साथ सड़क निर्माण के दौरान बीच में पड़ने वाले वृक्ष भी काट दिए गए। उत्तर प्रदेश के चमोली जिले में ही अब तक 1100 किलोमीटर लम्बी सड़क का निर्माण हो चुका है। यही स्थिति अन्य क्षेत्रों में भी है।

अन्धाधुन्ध वनों का कटाव :

वन विनाश का एक प्रमुख कारण वृक्षों को अन्धाधुन्ध काटना है। ईंधन अथवा औद्योगिक कार्यों हेतु छोटे बड़े किसी तरह के भी वृक्ष काट दिए जाते हैं। जब इन वृक्षों को वन से निकाला जाता है तो छोटे-छोटे पौधे एवं झाड़ियां रौंद दी जाती हैं अथवा टूट जाती हैं और इस प्रकार उनका जीवन समाप्त हो जाता है।

आजकल अधिकांश वनों की कटाई ठेकेदारों द्वारा कराई जाती है। ये ठेकेदार ठेके में लिए गए वृक्षों की अपेक्षा कई गुना अधिक वृक्ष भी काट डालते हैं: और वृक्षों को काटने में किसी प्रकार की सावधानी भी नहीं बरतते, जिससे अन्य वृक्ष भी नष्ट हो जाते हैं।

औद्योगिक उत्पादन :

प्रायः अनेक उद्योग वनों से प्राप्त कच्चे पदार्थ पर ही आधारित होते हैं। बड़े उद्योगों में कागज उद्योग मुख्य है। छोटे उद्योगों में प्लाइवुड, बांस बेंत से बनी सामग्री एवं फर्नीचर निर्माण आदि मुख्य हैं। असम में 52 प्लाइवुड के कारखाने लगाये गए जिससे ओलोंग नामक वृक्ष समाप्त होते जा रहे हैं। चाय की पेटियों के निर्माण से भी अनेक तरह के वृक्ष समाप्त होते जा रहे हैं। पश्चिमी घाट में कर्नाटक एवं तमिलनाडु के कागज कारखानों द्वारा बांस के जंगल काटकर समाप्त किए जा रहे हैं। अन्य क्षेत्रों में भी बांस के जंगल सीमित होते जा रहे हैं। स्पष्ट है कि एक टन कागज तैयार करने हेतु 1.9 टन बांस की आवश्यकता पड़ती है।

व्यापारिक फसलों का उत्पादन

भारत में वनों का विनाश व्यापारिक फसलों के उत्पादन के कारण भी हो रहा है, जैसे हिमाचल एवं केरल में विस्तृत वन क्षेत्र सेब के बागानों एवं अन्य व्यापारिक फसल क्षेत्रों में बदल दिए गए हैं। सेब को निर्यात करने हेतु पेटी तैयार करने के लिए भी पेड़ काटे जा रहे हैं। सन् 1986 में डेढ़ करोड़ पेटियों के निर्माणार्थ 50,000 पेड़ काटे गये थे। इस तरह प्रति हेक्टेयर सेब बागान हेतु 10 हेक्टेयर वन काटे जा रहे हैं।

कीड़ों-दीमकों एवं बीमारियों का प्रकोप:

वनों में असंख्य कीड़े तथा दीमक ऐसे होते हैं, जो वृक्षों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि इनको देख पाना कठिन होता है। इसी प्रकार वृक्ष विशेष को कई प्रकार की बीमारियां भी लग जाती हैं, जिससे वे असमय में ही सूख जाते हैं। ये कीड़े, दीमक एवं बीमारियां छोटे-छोटे पौधों को विशेष रूप से प्रभावित करती है।

वन विनाश के परिणाम:

वनस्पति किसी पारिस्थितिकी तंत्र का आधार है क्योंकि वनस्पति ही सौर ऊर्जा को ग्रहण करके प्रकाश संश्लेषण द्वारा विविध जैव पदार्थों का निर्माण करती है। इसीलिए इसे पारिस्थितिकी तंत्र में "उत्पादक" की संज्ञा दी जाती है। वन न सिर्फ उत्पादक हैं, वरन विभिन्न प्रकार के असंख्य प्राणियों के शरण स्थली भी हैं। प्राथमिक उत्पादक होने के नाते पृथ्वी पर सक्रिय जैव-भू-रसायन चक्रों के नियमन में भी हर प्रकार की वनस्पति विशेषतया वनों की विशेष भूमिका है। वनस्पति एवं वन सर्वाधिक जैव पुंज का निर्माण करते हैं। अतएव वनों के विनष्ट होने से सम्पूर्ण जैव भू रसायन-चक्रों के भंग होने तथा पारिस्थितिकी तंत्र के अस्थिर होने का खतरा है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वनों के विनष्ट होने का प्रभाव सिर्फ उसी स्थान और काल तक सीमित नहीं रहता जहां के वन काट डाले गये हैं, वरन इनका सम्पूर्ण दुनिया के सुदूर भविष्य एवं स्थानों पर भी कुप्रभाव पड़ेगा क्योंकि जैव-भू-रसायन चक्रों द्वारा सभी क्षेत्र परस्पर आबद्ध हैं।

वन विनाश के निम्नलिखित प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ रहे हैं :

अल्प विकसित देशों में इमारती एवं जलाऊ लकड़ी का अभाव:

बड़े पैमाने पर वनों की व्यापारिक कटाई के फलस्वरूप अल्प विकसित देशों में इमारती एवं जलाऊ लकड़ी का अभाव होता जा रहा है। अल्प विकसित देशों के 70 प्रतिशत लोग घरेलू ईंधन के लिए लकड़ी का ही उपयोग करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार उन अल्प विकसित देशों में जो प्रमुखतया जैव पुंज, लकड़ी, चारकोल, गोबर तथा फसलों की डंठली से प्राप्त ऊर्जा पर भोजन पकाने, घर को गर्म रखने एवं प्रकाश के लिए निर्भर करते हैं। लकड़ी एकत्र करने की गति, लकड़ी प्रदान करने वाली वनस्पति के उगने की गति से तीव्र है। एक अनुमान के अनुसार विश्व के 1.3 अरब लोग लकड़ी की कमी वाले क्षेत्रों में निवास करते हैं। यदि जनसंख्या वृद्धि से प्रेरित लकड़ी काटने की वर्तमान दर बनी रही हो सन् 2000 तक 2.4 अरब लोग ऐसे क्षेत्रों में रहेंगे जहां लकड़ी दुर्लभ होगी। जलाऊ लकड़ी के अभाव का सबसे अधिक बुरा असर गरीब लोगों पर ही पड़ता है जिसके चलते उनका जीवन स्तर और निम्न हो जाता है।

वनों के तीव्र विनाश से इमारती लकड़ी का भी अभाव होता जा रहा है तथा फर्नीचर एवं मकान बनाने हेतु लकड़ी मंहगी होती जा रही है तथा गरीबों के लिए मकान में लकड़ी का प्रयोग करना मुश्किल होता जा रहा है।

वृक्ष जातियों का विनाश :

वन एक ऐसा पारिस्थितिकी तंत्र है जिसमें विभिन्न प्रकार के वृक्ष या झाड़ियां एवं पौधे ही नहीं वरन् इनमें अनेक प्रकार के शाकाहारी, मांसाहारी, परजीवी एवं मृतोपजीवी प्राणी भी पलते है। इन असंख्य जातियों की जीनपरक विविधता तथा जैविक ऊर्जा कृषि, औषधि तथा उद्योग के लिए अति मूल्यवान है। इन असंख्य जातियों के सूक्ष्म प्राणियों की रक्षा से नये विकसित खाद्य स्रोत रसायन एवं औषधियों तथा औद्योगिक कच्ची सामग्री

प्राप्त की जा सकती है, जिससे मानव कल्याण में बहुत योगदान होगा। सिर्फ जंगली पौधे या वन्य पशु-जीवों की जातियां ही महत्वपूर्ण नहीं हैं, वरन केंचुए, मधुमक्खियां तथा दीमक जैसे प्राणी भी अति महत्वपूर्ण हैं। इन सूक्ष्म प्राणियों का महत्व पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता तथा सक्रियता के लिए और अधिक है। वैज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि इन विविध जातियों का जितना अधिक विनष्टीकरण अब हो रहा है, उतना पहले कभी नहीं हुआ था। इस प्रकार विश्व की जाति विविधता के विनष्टीकरण से प्राकृतिक जीन भण्डार समाप्त हो रहे हैं। परिणामस्वरूप विविध प्रकार के अधिक उत्पादकता प्रदान करने वाले पौधों एवं पशुओं का मूल स्रोत ही समाप्त होता जा रहा है।

वनों के कटाव से और इन विविध वृक्ष जातियों के अवमूल्यन से न सिर्फ विद्यमान कृषि, औषधि एवं औद्योगिक कच्ची सामग्री के विविध स्रोत समाप्त हो रहे हैं, वरन इन क्षेत्रों में जीन अभियन्त्रणा द्वारा भावी विकास की सम्भावनाएं विलुप्त होती जा रही हैं। यूनेप के स्टेट आफ दि वर्ल्ड एनवायरनमेन्ट 1987 के अनुसार पौधों की 2,65,000 वृक्ष जातियों में से वनों के कटाव के कारण 60,000 वृक्ष जातियां सदा के लिए विलुप्त हो गई हैं। यदि किसी वन क्षेत्र में 10 प्रतिशत का ह्रास होता है तो इनमें रहने वाली वृक्ष जातियों में से 50 प्रतिशत विलुप्त हो जाती हैं।

भूमि अपरदन में वृद्धि तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति का ह्रासः

वन आवरण समाप्त होने से मिट्टी का तीव्र गति से अपरदन होता है। किसी भी वनीय भूमि की 6 इंच गहरी मिट्टी के अपरदित होने में लगभग 174200 वर्ष लग जाते हैं किन्तु यदि भूमि बिना वन आवरण की होती है, तो मात्र 17 वर्षों में ही 6 इंच गहरी भूमि अपरदित हो जाती है। इसका कारण यह है कि वनस्पति आवरण की अनुपस्थिति से वर्षा का जल बिना अवरोध के सीधा भूमि पर गिरता है। साथ ही साथ इसके अतिरिक्त पौधों की अनुपस्थिति में मृदा को बांधकर रखने का कार्य करने वाली जड़े भी प्राप्त नहीं हो पाती। फलतः मिट्टी अपरदन सुगमतापूर्वक एवं अधिक मात्रा में होता है। विशेषज्ञों के अनुसार प्रतिवर्ष 6 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बाढ़ के जल के साथ बहकर समुद्र में चली जाती है।

बाढ़ में वृद्धि :

बाढ़ संकट का एक मुख्य उत्तरदायी कारक वन विनाश है। वनस्पति आवरण विहीन भूमि जीवांश की कमी होने के फलस्वरूप वर्षा की तेज धार सहन नहीं कर पाती है, न ही जल सोख पाती है। फलतः मिट्टी वर्षा के पानी के साथ कटकर बह जाती है एवं अन्दर से कड़ी खुली चट्टान उभर आती है। मिट्टी के कटकर बहने से नदियों में अवसाद की वृद्धि होती जाती है जिससे नदी जल उथली हो जाता है और जल बाढ़ के रूप में फैल जाता है। अकेले गंगा नदी, जिसका उद्‌गम स्थल मध्य हिमाचल है, प्रतिवर्ष 340×10^6 मिट्रिक टन अवसाद होती है। इस तरह गंगा नदी का तल अवसाद भरने के कारण प्रति वर्ष 2 से 3 इंच की दर से उठा रहा है। ब्रह्मपुत्र नदी का तल भी पिछले 50 वर्षों में 14.5 फीट ऊपर उठ गया है। एक सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1970 से पहले अलकनंदा नदी में गाद की मात्रा मात्र 0.3 प्रतिशत थी, जो अब 1.06 प्रतिशत से भी अधिक हो गई है। टिहरी में भगीरथ नदी का तल भी पहले से 3 मीटर ऊंचा हो गया है।

सूखा एवं मरूस्थलीकरण में वृद्धि :

सूखा एवं मरूस्थलीकरण का एक मुख्य कारण वन विनाश भी है। वन विनाश के कारण भूमिगत जल के स्तर में अत्याधिक कमी हो जाती है। भारत के पश्चिमी घाट क्षेत्रों में वन विनाश के कारण ही मरूस्थलीकरण की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

भू-स्खलन में वृद्धि :

वन विनाश के चलते पर्वतीय क्षेत्रों में भू-स्खलन में भी वृद्धि हुई है। वनस्पतियों के नष्ट होने के कारण पर्वतीय ढाल-भू-पिंड को अपने साथ बनाए रखने में असमर्थ हो जाते हैं। फलस्वरूप भू-स्खलन की सम्भावना बढ़ जाती है।

जलवायु में परिवर्तन :

वन पारिस्थितिकी तंत्रों को संचालित करने वाले जैव भू रासायनिक चक्रों के नियामक होते हैं। इनमें जल चक्र एवं कार्बन चक्र मुख्य हैं। वन विनाश के कारण कार्बन चक्र में गड़बड़ी पैदा हो जाती है और यही जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण बनता है। वनों के क्षेत्रफल में निरन्तर ह्रास एवं वायुमण्डल में कार्बन डाइ-आक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड, सल्फर डाइआक्साइड आदि गैसों की वृद्धि से कार्बन चक्र की क्रियाशीलता बढ़ रही है। यूनेस के एस० डब्ल्यू० ई०1987 के अनुसार प्रतिवर्ष वायुमण्डल में 5 हजार टन कार्बन कारखानों एवं अन्य स्रोतों से उड़ेला जा रहा है। वन एवं मिट्टी से एक से दो अरब टन तक कार्बन वायुमण्डल में पहुंच रहा है, जिसका 80 प्रतिशत उष्ण कटिबन्धीय वनों के विनष्ट होने के कारण उत्पन्न हो रहा है।

अध्ययन के अनुसार कार्बन की वायुमण्डल में इस बढ़ती मात्रा का जलवायु पर विशेष प्रभाव पड़ेगा। इस प्रभाव को "ग्रीन हाऊस" इफैक्ट कहा जाता है। कार्बन सूर्य से लघु तरंगों में

वायुमण्डल में प्रवेश करने वाली किरणों के लिए बाधक नहीं होता, परन्तु पृथ्वी तल के विकिरण से दीर्घ तरंगों में जाने वाले विकिरण को रोक लेता है। इस प्रकार वायुमण्डल में सौर ऊर्जा की अधिकता के कारण औसत तापमान बढ़ता है इसके कारण विगत सौ वर्षों में वायुमण्डल का औसत तापमान 0.3 डिग्री सेल्सियस से 0.7 डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। इस गति से वायुमण्डल में सन् 2030 तक 1.5 डिग्री सेल्सियस से 4.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाने की आशंका है। वायुमण्डल में तापमान की इस वृद्धि के फलस्वरूप जल चक्र प्रभावित होगा। अभी हिमानियों के रूप में जो पृथ्वी पर जमा हुआ जल है, वह पिघलने लगेगा। समुद्री जल स्तर के ऊपर उठने से समुद्र तटीय क्षेत्र डूब जायेंगे। वायुमण्डल में तापमान की इस वृद्धि का प्रभाव कृषि पर भी व्यापक रूप से पड़ेगा। यद्यपि फसलों पर कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में वृद्धि का प्रत्यक्ष प्रभाव लाभकारी होगा। परन्तु 2 डिग्री सेल्सियस तापमान वृद्धि तथा वर्षा की मात्रा अपरिवर्तित रहने पर फसलों की उपज 3 से 17 प्रतिशत तक कम हो जायेगी।

इस तरह कार्बन डाइआक्साइड में अत्याधिक वृद्धि के फलस्वरूप वातावरण के तापमान में वृद्धि होती जाएगी और जलवायु पर विपरीत असर पड़ेगा। अम्ल वर्षा भी इसी तथ्य पर आधारित है। सूर्य से आने वाली ऊर्जा का लगभग 40 प्रतिशत भाग धरती के वातावरण तक पहुंचने से पहले ही अंतरिक्ष में लौट जाता है। 15 प्रतिशत वातावरण में अवशोषित हो जाता है और धरती के धरातल तक लगभग 45 प्रतिशत ही पहुंच पाता है। यह गर्मी के रूप में पृथ्वी से परावर्तित होता है। इसका अधिकांश भाग वातावरण सोख लेता है। बाकी हिस्सा अंतरिक्ष में वापस चला जाता है। वातावरण में कुछ गैसें जमा होती रहती हैं और ऊपरी वायुमण्डल में एक ऐसी परत बना लेती है जिसका प्रभाव पौधों को बाहरी गर्मी-सर्दी से बचाने के लिए बनाये गए ग्रीन हाऊस जैसा होता है। यह सूर्य की किरणों को धरती पर जाने देता है, किन्तु परावर्तित होकर लौटते समय अपने में अधिकांश भाग को सोख लेता है। इसे ही "ग्रीन हाऊस प्रभाव" कहते हैं। इस तरह दुनिया भर का तापमान तो बढ़ेगा ही, साथ ही पूरी दुनिया का मौसम भी बदलेगा।

भारतीय विशेषज्ञों के एक दल द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार लगभग 7 हजार वर्ष पूर्व थार मरू भूमि में पर्याप्त वर्षा होती थी। वहां की धरती जामुन जैसे अनेक वृक्षों से आच्छादित थी एवं कई झीलें तथा नदियां प्रभावित होती थी, जबकि आज थार एक रेगिस्तान में बदल चुका है और इस रेगिस्तान का फैलाव राजस्थान, गुजरात, पंजाब एवं हरियाणा तक होता जा रहा है और अनियमित प्रतिरोधों के अभाव में शेष हरियाली भी इसका ग्रास बनती जा रही है। इस तरह इस रेगिस्तानी के फैलाव का मुख्य कारण वनों के विनाश से उत्पन्न जलवायु परिवर्तन एवं अनावृष्टि ही रही है। विशेषज्ञों की यह भी राय है कि यदि इसी तरह वन आवरण समाप्त होता रहा है तो इस रेगिस्तान का साम्राज्य उत्तर प्रदेश, बिहार होता हुआ पश्चिम बंगाल एवं असम तक फैल सकता है।

इस तरह स्पष्ट है कि वन विनाश का प्रभाव जलवायु के विभिन्न पहलुओं पर पड़ रहा है, जिससे सम्पूर्ण बाह्य पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हो रहा है।

वन विनाश के उपर्युक्त दुष्परिणामों को देखते हुए स्काटलैण्ड के विज्ञान लेखक राबर्ट चेम्बर्स ने सत्य ही लिखा है कि "वन नष्ट होते हैं तो जल नष्ट होता है, मत्स्य और शिकार नष्ट होते हैं, फसलें नष्ट होती हैं, पशु नष्ट होते हैं, उर्वरता विदा ले जाती हैं और तब ये पुराने प्रेत एक के पीछे एक प्रकट होने लगते है। 'बाढ़, सूखा, आग, अकाल और महामारी'।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वन विनाश के कारण वनोत्पाद से प्राप्त होने वाली वस्तुओं का अभाव तो हो ही जाता है, साथ ही साथ हमारा आन्तरिक एवं बाह्य पारिस्थितिकी तंत्र भी अस्थिर हो जाता है, जिसके चलते सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र असंतुलित होकर संकट पैदा कर देता है और अन्ततः जीव जगत के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है।

वन विनाश रोकने के उपायः

वनों का विनाश वन प्रबन्ध, वन रक्षण एवं वन संरक्षण के माध्यम से रोका जा सकता है। विश्वव्यापी व्यापारिक वन दोहन के इस युग में हम धरती की घटती हरियाली की पुनर्स्थापना वन प्रबन्ध एवं वन संरक्षण द्वारा ही कर सकते हैं।

वन प्रबन्ध :

वन प्रबन्ध की दो मुख्य विचार धाराएं हैं- प्रथम विचारधारा के वन विशेषज्ञों का मत है कि वनों का प्रबन्ध रेशा फसल के रूप में इस तरह से करना चाहिए जिस तरह हम खाद्य फसलों की खेती करते हैं। कारण यह है कि जनसंख्या वृद्धि के साथ ही साथ प्रति व्यक्ति रेशा उपभोग में भी वृद्धि होगी और उसी के अनुसार वन उत्पादों की मांग में भी वृद्धि होगी। इसलिए इनकी

शेष पृष्ठ 25 पर

कहानी

गांव की ओर

✍ डा0 शीतांशु भारद्वाज

फिर ? नत्थू ने सुलतान की ओर बीड़ी का बंडल बढ़ाते हुए पूछा।

-फिर तो यार, मैं दिल्ली में बेपैंदे के लोटे की तरह से इधर-उधर लुढ़कता ही रहा। बंडल से बीड़ी खींचते हुए सुलतान ने बताया, पहले होटलों में काम किया करता था। अब भाग ने यहां ला पटका!

-तो फिर अब यहां से भी उखड़ेगा ? नत्थू सिर खुजलाने लगा।

-यार दूर के ढोल सुहावने लगते हैं। शहर के नाम पर सुलतान ने मुंह बिचका दिया।

-कारखाने के वे दोनों कामगार बाहर लॉन पर बैठे हुए बीड़ी फूंकते जा रहे थे।

-ओए, ओ खोते दे.....। तभी अंदर से एक जानी-पहचानी हुई आवाज आई।

-यार, ये साला मैनेजर जब भी बोलता है, ऐसे ही बोला करता है। नत्थू ने बीड़ी का कश लेकर पूछा, जानता है, खोते दे पुत्तर किसे कहते हैं ?

-न। सुलतान ने भोलेपन से सिर हिला दिया।

-खोते याने गधे! नत्थू पीली बत्तीसी दिखलाने लगा। उसने बीड़ी एक ओर फेंक दी, याने गधे के बच्चे!

पहले कारखाने के अंदर बीड़ी-सिगरेट पीने पर कोई पाबंदी नहीं थी। किंतु जब से यहां सरदार मैनेजर आया है, उसने धूम्रपान पर सख्त पाबंदी लगा दी है। लान से उठकर ये दोनों अंदर धड़धड़ाती हुई मशीनों की ओर जाने लगे।

-ओए, ओ सुलतान दे बच्चे! पीछे से मैनेजर ने उसे टोक दिया।

- हां,जी, सुल्तान मैनेजर की मेज के पास खड़ा हुआ।

-बीड़ी-सीड़ी कम पिया कर, समझे! मैनेजर ने उसे चेतावनी दे डाली ।

- अच्छा साब! सुलतान उधर से अपनी मशीन की ओर चल दिया। उसने मशीन के मुंह में दूध का ड्रम उडेला और उसकी डाई ठीक करने लगा।

कारखाने में जोर-शोर से काम चल रहा था। दूध के उस कारखाने में आईसक्रीम से लेकर शुद्ध घी तक सभी कुछ बना करता है। पचासों कामगारों को इससे रोजी-रोटी मिलती है। आए दिन अखबारों में वहां के माल का मोटे-मोटे अक्षरों में प्रचार होता रहता है। हर किसी विज्ञापन में माल की शुद्धता की गारंटी दी हुई होती है। सुलतान सोच कर हंस दिया। वही जानता है कि उस माल में कितनी शुद्धता होती है। अगले ही क्षण उसकी आंखों में एक सपना तिर आया। गांव-जवार की भीनी-भीनी महक! एक बाड़े में 15-20 भैंसे बंधी हुई हैं। वह उनके लिए मशीन पर चारा काट रहा है। उसके साथ वहां चंदरो भी सानी-पानी करती आ रही है। हाल ही में उनका विवाह हुआ है। वह एकटक चंदरो को ही देखे जा रहा होता है। जाने उसे क्या होता है कि वह सानी करती हुई चंदरो के पास जा कर उसके कंधे पर हाथ रख कर उसका सिर सूंघने लगता है।

- अरे, हटो न! चंदरो के काम करते हुए हाथ बीच में ही रुक जाते हैं।

-सच! तू तो जैसे बिजली ही गिरा रही है। उसके रूप की गंध में डूबता हुआ सुलतान उसकी आंखों में झांकने लगता है।

-तो ऐसे नहीं मानोगे? चंदरों उसके गाल पर सानीभरा हाथ लगा देती है। वह खिलखिला कर हंस पड़ती है।

दोनों यों ही हंसी ठिठोली करते रहते हैं। तभी उधर मां आ जाती है। वे दोनों अपना-अपना काम करने लगते हैं।

-क्यों ? हरभजन ने सुलतान के कंधे पर हाथ रख कर उसकी तंद्रा भंग की।

-मंगेतर की याद आ गई होगी। महासिंह ने हरभजन को देख कर आंख दबा दी।

- हां भई, फिर घुड़चढ़ी कब हो रही है ? हरभजन ने उसके विवाह की बात छेड़ दी।

-बस सरदारजी, अगले चैत-वैशाख में ...। सुलतान कुछ

शरमा गया।

सामने से मैनेजर आ रहा था। सभी अपनी-अपनी मशीनों की ओर चल दिए। सुलतान की मशीन खरड़-खरड़ करने लगी थी। उसने उसके मुंह में दूध का दूसरा ड्रम उंडेल दिया। वह फिर से सोच-विचार में डूबने लगा।

सुलतान ने अपने संगी-साथियों के बीच चंदरो वाली बात यों ही चला रखी है। पिछले कुछ महीनों से वह अपने प्यार-मोहब्बत की दास्तान सुनाता आ रहा है। इससे उसको मानसिक सुख मिलने लगता है।

शाम घिर आई थी। कारखाने के सभी कामगार अपने घरों को चल दिए। समय से बेखबर हो, सुलतान उसी प्रकार सोच में डूबा हुआ था। उसकी आंखों के आगे एक दूसरी ही चंदरो घूमने लगी। दक्षिणी दिल्ली की जिस गन्दी बस्ती में वह रहता है, वहां भी तो एक चंदरो रहा करती है। मुरारी की बेटी रत्न भी तो चंदरो की ही हमशक्ल है। पिछले कुछ दिन से वह उसी को देख-देख कर गांव की चंदरो को भूलता जा रहा है।

-तू कह तो मुरारी से बात करते हैं। एक दिन सुलतान के साथी रामधन ने कहा था।

-लेकिन बिना मां से पूछे ...। सुलतान को मां की याद हो आई थी।

-अरे, गांव की बातों को मार झाड़ू! रामधन ने उसे झिड़क दिया था, घर तो तुझे बसाना है न!

रामधन की बात सुलतान को जंच गई थी। धीरे-धीरे उसका लगाव रत्ना के साथ कुछ ज्यादा ही होने लगा था। मुरारी के यहां भी उसका कुछ अधिक ही आना-जाना होने लगा था। तब से उसकी आंखों में वही चंदरो बसती आ रही है।

-क्यों, चलना नहीं है क्या ? नत्थू ने सुलतान की पीठ पर एक धौल जमा दी।

-अरे हां। सुलतान सामान्य हो आया।

दोनों कारखाने से निकलकर गेट की ओर चल दिए।

-इस प्रकार दिल छोटा न किया कर यार! नत्थू ने स्टैंड से अपनी साइकिल निकाल कर कहा।

-समझा नहीं। सुलतान उसकी साइकिल के पीछे बैठ गया।

-यही कि नौकरी से मन न उखाड़ा कर। नत्थू साइकिल पर पैडल मारने लगा, आजकल कितनी बेकारी फैली हुई है। एक चाहिए तो सैकड़ों मिल जाते हैं।

-यार, यहां शहरों में छल-कपट और धोखाधड़ी बहुत बढ़ने लगी है। सुलतान ने कहा, अब अपने ही कारखाने को ब न! यहां कितना-कुछ ..।

-हमें क्या! मजदूरों को अधिक नहीं सोचना चाहिए। नत्थू उसे समझाने लगा, जो करेगा, सो भरेगा!

सुलतान की बस्ती आ गई थी। वह साइकिल से उतर गया। गली में आकर उसने अपनी कोठरी का ताला खोला। वहां मां का पत्र पड़ा हुआ था। वह उसके अक्षर मिला-मिला कर पढ़ने लगा। मां ने लिखा था कि वैशाख में उसका ब्याह हो जाएगा। वह गांव-जवार की गलियों में घूमने लगा। कहीं मां ने वह पत्र चंदरों से ही तो ...। काश! वे दो शब्द उसके बारे में भी लिखवा देती! पत्र को एक ओर रख कर वह चूल्हा सुलगाने लगा।

चूल्हे पर आठ-दस रोटियां सेंक कर उसने उस पर चाय का पानी चढ़ा दिया। चटनी के साथ रोटी खाकर ऊपर से उसने चाय पी।

उस कोठरी में सुलतान को नींद नहीं आ पा रही थी। उसका साथी रात की ड्यूटी पर था। वह निरंतर करवटें ही बदलता रहा। बड़ी मुश्किल से नींद आई तो आधी रात के आस-पास वह उचट गई। आंखें मलता हुआ वह खिड़की पर जा खड़ा हुआ। बाहर कहीं से शोरगुल के स्वर आ रहे थे। वह कोठरी से बाहर चल दिया।

-क्या हुआ, भोलू ? उसने गली से जाते हुए भोलू से पूछा।

-पुलिस ने मुरारी के यहां छापा मारा है। भोलू ने बताया।

-छापा? सुलतान उसका मुंह ताकने लगा।

-हां। भोलू ने बताया, वे लोग कच्ची जो निकाला करते हैं।

बहुत से तमाशबीनों के साथ मुरारी के आंगन में सुलतान भी जा पहुंचा। वहां कच्ची शराब की बहुत सारी बोतलें थीं। मुरारी की मिल में रात की ड्यूटी थी। रत्ना और उसकी मां वहीं एक ओर हाथ बांधे खड़ी थीं। बार-बार पलकें उठाता-गिराता हुआ सुलतान उस शहरी चंदरों को ही देखता जा रहा था। उसका विश्वास उसे छलने लगा।

पुलिस ने दोनों मां-बेटी को जीप में बिठला लिया। सुलतान कोठरी में आया तो उसकी नींद उड़ चली थी। सुबह रामधन ने दरवाजे पर दस्तक दी। उसके हाथ-मुंह धोया और चूल्हे पर चाय के लिए पानी चढ़ा दिया।

-रात को यहां कुछ हंगामा हुआ था ? रामधन ने सुलतान से पूछा।

को न तो किसी कारखाने में नियुक्त किया जा सकता है और न ही उसे वहां कार्य करने की अनुमति दी जा सकती है।

(5) धारा 69 में यह व्यवस्था की गई है कि यदि बाल श्रमिक शारीरिक रूप से स्वस्थ व काम करने लायक है तो उससे काम पर लिया जा सकता है, बशर्ते कि उसके पास स्वस्थता का प्रमाण-पत्र व टोकन हो। यदि प्रमाण-पत्र झूठा साबित हो जाता है तो जुर्माना और कैद अथवा दोनों सजाएं दी जा सकती हैं। धारा 70- ऐसा बाल श्रमिक सभी आशयों के लिये वयस्क श्रमिक माना जायेगा और वयस्क श्रमिक के समान समस्त सुविधाएं पाने का अधिकारी होगा।

(6) धारा 71 में व्यवस्था है कि किसी भी बाल श्रमिक को दोहरे रोजगार पर नियुक्त नहीं किया जायेगा। एक दिन में साढ़े चार घंटे से अधिक कार्य नहीं लिया जा सकता।

(7) धारा 72 के अनुसार बाल श्रमिक के लिए कार्य अवधियों की सूचना प्रदर्शित की जाएगी जिसमें स्पष्ट रूप से प्रत्येक दिन बालकों के कार्य की अवधियां दिखायी जायेंगी।

(8) धारा 73 के अन्तर्गत उल्लेख है कि कारखानों में बाल श्रमिक के लिए पृथक रजिस्टर रखे जाने चाहिये जिसमें बाल श्रमिक का नाम, कार्य का नाम, समूह का नाम इत्यादि बातों का उल्लेख होगा। धारा 74 बतलाती है कि बाल श्रमिक से कार्य अवधियों में दी गई सूचना व रजिस्टर में दिए गए विवरण के विरुद्ध कार्य नहीं लिया जा सकता।

(9) धारा 79 के अनुसार किसी भी केलैण्डर वर्ष में 240 दिन या अधिक दिन कार्य करने पर बालक श्रमिक को 15 दिन पर 11 दिन की दर से सवेतन अवकाश प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(10) धारा 87 के अनुसार किसी भी बाल श्रमिक से कारखाने में खतरनाक क्रियाओं पर कार्य नहीं लिया जा सकता।

इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान का अनुच्छेद 24, ऐसे बालकों को जो 14 वर्ष से कम उम्र के हैं, किसी कारखाने या अन्य किसी खतरनाक कार्य में नियुक्त करने से रोकता है। संविधान के अनुच्छेद 39 में यह भी उल्लेख है कि राज्य अपनी नीतियों के माध्यम से यह निश्चित करेंगे कि बालकों के स्वास्थ्य व उनकी शक्ति का दुरुपयोग न हो, उन्हें गरीबी के कारण ऐसे काम पर जाने से रोका जाए जो उनकी उम्र व शक्ति के अनुकूल न हो।

राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के तहत धारा 39 (ई) में भी बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिये विशेष प्रावधान किये गये हैं। अब तक बने कानूनों की कमियों को दूर करने के लिए सरकार द्वारा बाल श्रमिक नियमन एवम् उन्मूलन अधिनियम 1986 का भी निर्माण किया गया। यह अधिनियम कुछ जोखिम युक्त कार्यों पर बालकों की नियुक्ति पर प्रतिबंध लगाता है तथा कुछ कार्यों में कार्य शर्तों को नियमित करता है। बाल श्रमिकों का शोषण रोकने हेतु सरकार द्वारा अगस्त 1987 में राष्ट्रीय बाल श्रमिक नीति की घोषणा की गई, जिसके तहत सरकार ने बच्चों के जन्म से पहले और जन्म के बाद स्वस्थ शारीरिक व मानसिक विकास का संकल्प लिया है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण धंधों को सहकारी क्षेत्र में लाये जाने का प्रावधान है। इससे भी बाल श्रमिकों का शोषण काफी सीमा तक रुक सकेगा। अभी हाल ही में अमरीका में बाल श्रमिकों के सम्बन्ध में एक अधिनियम प्रस्तुत किया गया जिसमें बतलाया गया कि यदि भारत सरकार ने बच्चों का शोषण रोकने के विरुद्ध कठोर कदम नहीं उठाये तो अमरीका द्वारा भारत में बाल श्रमिकों द्वारा निर्मित वस्तुओं का आयात बन्द कर दिया जायेगा। भारत को इस बात की गारन्टी देनी होगी कि उक्त वस्तु बाल श्रमिकों द्वारा निर्मित नहीं है अन्यथा आपात समझौता रद्द समझा जायेगा।

भारत सरकार ने अमरीका के इस विधेयक पर काफी गम्भीरता से विचार किया तथा अपने देश में भी बाल श्रमिकों के शोषण को रोकने हेतु एक विधेयक पेश किया जिसका नाम "बाल मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, 1992" है। आशा है यह अधिनियम बाल श्रमिकों के शोषण को रोकने में प्रभावी सिद्ध हो सकेगा। अभी हाल ही में सरकार ने बाल श्रमिक कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू करने के उद्देश्य से एक बाल श्रमिक योजना प्रारम्भ की है। इस तीन वर्षीय परियोजना के दौरान बाल श्रमिक प्रतिबंधित और बाल श्रम प्रथा को समाप्त करने के लिये सरकार महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

सरकार द्वारा इतने कानूनों का निर्माण किये जाने के बाद भी स्थिति में बदलाव आने की सम्भावना नहीं लगती। देश के हर हिस्से में बाल श्रमिकों की स्थिति एक जैसी ही है। सभी कानूनों को ताक में रखकर बाल मजदूरों से काम लिया जाता है और शारीरिक, आर्थिक, मानसिक रूप से उनका शोषण किया जाता है। हकीकत यह है कि छोटे कल-कारखाने ही नही, लघु उद्योग भी इन्हीं बाल श्रमिकों के बल पर चलते हैं। हस्त कालीन उद्योगों में देखा जा सकता है कि बच्चों से 15-16 घंटे काम लेने के बदले

6-7 रुपये की दैनिक मजदूरी प्रदान की जाती है। बच्चों के शोषण को देखते हुए बाल श्रम पर प्रतिबन्ध लगाना ठीक है किन्तु व्यवहार मे ऐसा सम्भव नहीं लगता है। इससे तो बाल श्रमिकों पर आधारित परिवारों की आर्थिक दशा और दयनीय हो सकती है। बढ़ती आर्थिक कठिनाइयों, महंगाई, जनसंख्या, बेरोजगारी आदि से त्रस्त होकर बालक मजदूरी करने को विवश हो रहे हैं। देश में गरीबी इस तरह समाई हुई है कि व्यक्ति शिक्षा व स्वास्थ्य की अपेक्षा दो जून मिलने वाली रोटी को अधिक महत्व प्रदान करता है।

अत: मैं इस बात पर जोर देना चाहूँगा कि चाहे सरकार द्वारा कितने ही कानूनों का निर्माण कर दिया जाये, जब तक सरकार द्वारा लोगों की गरीबी व बेरोजगारी को दूर करने का प्रयास नहीं किया जाता तब तक इस समस्या का हल नहीं ढूंढा जा सकता। देश के नागरिकों के लिये शिक्षा व स्वास्थ्य की सुविधाओं की व्यवस्था तो करनी ही होगी, साथ ही गरीबी दूर करने के लिये आधारभूत विकास कार्यों को भी बढ़ावा देना होगा।

बच्चों के जीवन की दयनीयता तभी समाप्त हो सकती है जबकि सरकार द्वारा इनकी समस्याओं को सहानुभूतिपूर्ण व मानवीय दृष्टि से समझा जाये और उन्हें दूर करने की कोशिश की जाये। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा बच्चों के माता-पिता की सामाजिक व आर्थिक दशा में सुधार, प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था, दूरदर्शन व आकाशवाणी के माध्यम से श्रम कानूनों की जानकारी जनता तक पहुँचाना, 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर देना, शिक्षा की मुफ्त व्यवस्था, बच्चों के माता-पिता को आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाना, श्रम कानूनों का उल्लंघन करने पर कठोर दण्ड की व्यवस्था करना इत्यादि उपाय भी बाल श्रम को रोकने में प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं। बाल श्रम को समाप्त करने में स्वयंसेवी संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभा सकती हैं।

सरकार द्वारा बाल कल्याण के सम्बन्ध में योजनाओं का निर्माण किया जा सकता है किन्तु ये योजनायें सफल तभी होगी जब अत्यन्त साहस के साथ समस्त कठिनाइयों का सामना करते हुए उनको कार्यान्वित किया जाए।

व्यावसायिक प्रशासन विभाग
सेठ मोती लाल (पी.जी.) महाविद्यालय
झुंझुनू (राज.)

पृष्ठ 19 का शेष

पूर्ति हेतु वृक्षों एवं अन्य रेशायुक्त पौधों की कृषि ही एक मात्र समाधान है। दूसरी विचारधारा के विशेषज्ञों का मत है कि वनों के साथ फसलों के समान व्यवहार करना उचित नही है। इसका कारण यह है कि वनों की उपयोगिता मनोरंजन स्थलों, वन्य जीव के आवास-निवास आदि अन्य उपयोगी कार्यों में भी है। यही नहीं वृक्षों के फार्म एवं प्राकृतिक बहुउपयोगी वन दो भिन्न पारिस्थितिकी तंत्र है।

इस प्रकार वन प्रबन्ध के अनेक मार्ग हैं जिनमें एक यह है कि वनों को प्राकृतिक अवस्था में जैसा का तैसा ही छोड़ दिया जाये, पर यह व्यावहारिक नही होगा क्योंकि वनों का उपयोग विभिन्न कार्यों हेतु करने के लिए वन पारिस्थितिकी तंत्र में कुछ अंशों तक परिवर्तन करने ही होंगे।

प्रतिभा प्रकाशन
बलिया - 277001 (उ0प्र0)

आवश्यकता है पर्यावरण क्रांति की

✍ निशीथ शर्मा

पर्यावरण का आशय है-पशु जगत, पक्षी जगत, जल जगत एवं वायु, नदी, पहाड़, खनिज संपदा, जो प्रकृति की देन है। पर्यावरण इन जैविक तथा अजैविक घटकों का समूह है, जो परस्पर प्रक्रिया द्वारा मानव तथा जीव-जन्तुओं के जीवन को प्रभावित करता है। इतना सब होने पर भी प्रकृति के सभी विभिन्न घटकों में संतुलन बिगड़ जाने से सम्पूर्ण पर्यावरण तंत्र अस्थिर हो जाता है। इस अस्थिरता को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं और इसके विपरीत प्रकृति के सभी घटकों में संतुलन बना रहता है तो उसे पर्यावरण संरक्षण कहते हैं। पर्यावरण आज की जटिल एवं ज्वलंत समस्या है।

भारतीय संस्कृति में वृक्षों को देवता माना गया है। हमारे महान आयुर्विज्ञानिकों की धारणा है कि संसार में ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जो अभैषज्य हों। संभवतः इसी लिए वृक्षों को वन्दनीय कहा गया है।

आज भी भारतीयों द्वारा वटपूजा, आंवला एकादशी आदि की पूजा होती है तथा तुलसी के पौधे की पूजा तो घर-घर होती चली आ रही है। वृक्षों की लकड़ी ईंधन के काम आती है। पेड़ों की लकड़ी बांस, शस्त्र, औजार, रबड़, लाख, जड़ी-बूटी, तथा खाने के लिए फल, खाद्य पदार्थ तथा मेवे इत्यादि वनों एवं पौधों के उपहार हैं जो जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। पशु-पक्षियों के पालन में भी पेड़-पौधे सहायक हैं।

पेड़ पौधों से निकलने वाली घास से हमारे जानवरों का पेट भरता है, जिससे हमें दूध, घी, मांस, ऊन आदि मिलती है। उनकी पत्तियां जहां तेज वर्षा से भूमि कटाव को बचाती हैं, वहीं सड़कर कीमती खाद और मिट्टी में बदल जाती है, जिन पर हमारी भूमि की उर्वरा शक्ति निर्भर करती है। पेड़ की जड़ें भूमि को जकड़े रखती हैं, जिससे भू-स्खलन से बचाव होता है। जंगल पर्याप्त हो तो वर्षा यथासमय होती है जिस पर हमारी खेती निर्भर करती है, अन्यथा सूखा और बाढ़ होते हैं जो दोनों विनाशकारी हैं। वृक्ष शोर-धूल और तमाम प्रदूषणकारी तत्वों और गैसों को सोखकर वातावरण को मनोरम, सुखद और शांतिमय बनाते हैं। पेड़ अपने 50 वर्ष के जीवन में जितना कुछ देता है उसकी कीमत 50 लाख रुपये आंकी गई है।

वनों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है, इस बात का ध्यान रखते हुए ही हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान में भी इस तथ्य को स्वीकारते हुए भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में 'पर्यावरण सुरक्षा' को शामिल किया है। संविधान की धारा 48 "अ" के अंतर्गत राज्य सरकारों को यह निर्देश दिया कि वे वन के रख-रखाव, हरियाली और खुशहाली के लिए निम्न निदेशों का पालन करें-

वनों से प्राप्त कच्चे सामान को उद्योग-धन्धों में इस प्रकार भेजें, ताकि प्रकृति और मानव का संतुलन बना रहे। हरियाली के लिए एक विशेष समिति का गठन, धन की व्यवस्था व समय-समय पर उसकी रिपोर्ट केन्द्र को देना। कृषि के विकास पर अधिक बल, हरियाली, वृक्षारोपण समारोह, पुरस्कार तथा अन्य कारगर उपाय ताकि अधिक से अधिक खुशहाली हो।

जनसंख्या में वृद्धि से जंगलों का विनाश हुआ। भवन निर्माण और उद्योगों के लिए आवश्यक लकड़ी की प्राप्ति के कारण भी वनों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। जहां वन अधिकारी उचित सीमा से अधिक वनों का कटान करवा लेते हैं वहीं वनों की चोरी पर पनपने वाला गिरोह येन-केन-प्रकारेण लकड़ी प्राप्त कर ही लेता है। सदियों से वनों में जानवर बेरोक-टोक चर रहे हैं जिस कारण उनमें नई घास को न तो उगने का मौका मिलता है और न ही किसी प्रकार उनकी उत्पादकता बढ़ाने के प्रयास किए गए हैं। जिससे वनों में पेड़-पौधों का पनपना कठिन हो गया है।

आदिवासियों में चल खेती "झूम" की प्रथा ने भी जंगलों के विनाश में योग दिया है। इस प्रथा के अंतर्गत आदिवासी जंगलों को काटकर जलाते हैं तथा वहां पर खेती करते है, दो-तीन साल तक इस प्रकार तैयार भूमि पर खेती के बाद वे दूसरी जगह जाकर खेती करने लगते हैं। इससे जंगलों के कटान के अलावा भूमि क्षरण भी होता है।

वन विनाश में अनियंत्रित पशुपालन, वनों में आग लगना, बांध व सड़क निर्माण, औद्योगिक, व्यापारिक फसलों का उत्पादन और कीड़ों, दीमकों एवं बीमारियों का प्रकोप भी सहायक रहा है। वनों को तबाह करने में कई विकास योजनाओं का गहरा हाथ है जैसे खनन आदि।

हर साल वृक्षारोपण के नाम पर बरसात में जगह-जगह

हल्के-हल्के गडढ़े खोद कर कुछ पेड़-पौधे लगा तो अवश्य दिए जाते हैं लेकिन उनकी देखरेख एवं पालन-पोषण का उचित प्रबंध न होने से अधिसंख्य पेड़ पानी की कमी या कुछ अन्य कारणों से नष्ट हो जाते हैं और अगले साल फिर पौधे लगा दिए जाते हैं। इस प्रकार पौधे तो पनपते नहीं है, सरकारी धन का दुरुपयोग अवश्य होता रहता है।

वृक्षारोपण और विनाश में समीकरण न होने से आज देश में इमारती लकड़ी और ईंधन का भीषण संकट उत्पन्न हो गया है। साथ ही साथ बाढ़-सूखा और मृदा क्षरण से देश को बहुत हानि हो रही है। लगभग 25 लाख हैक्टेयर भू-क्षेत्र प्रति वर्ष बाढ़ग्रस्त हो जाता है। 140 लाख हेक्टेयर यानी 43 प्रतिशत भू भाग मृदा क्षरण से प्रभावित है। यदि सतही उर्वर भूमि का मूल्यांकन किया जाए तो लगभग 700 करोड़ रुपये मूल्य के मृदा के खनिज तत्व प्रतिवर्ष नदियों द्वारा बहकर समुद्र में चले जाते हैं। 60 करोड़ टन से भी अधिक मिट्टी प्रति वर्ष बह जाती है जिसका अधिकांश भाग समुद्र में जाकर जमा होता रहता है।

आज विश्व की जलवायु में जो आश्चर्यजनक परिवर्तन हो रहे हैं। उनके पीछे एक प्रमुख कारण वनों का ह्रास है। फलतः पृथ्वी ज्यादा गर्म होती जा रही है, बर्फ पिघल सकती है और धरती का एक बढ़ा हिस्सा जलमग्न हो सकता है। पिछले कुछ वर्षो में यह देखने में भी आया है, कई समुद्रों के किनारे समुद्रों की चपेट में आ गए हैं और उनका ही हिस्सा बनकर रह गए हैं, उनके जल स्तरों में भी दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। अगर इसे रोका न गया तो कुछ समय बाद पृथ्वी का काफी हिस्सा समुद्रों की चपेट में आ जाएगा।

चरागाह नष्ट हो रहे हैं, पशु पालक उजड़ रहे हैं, जलाऊ लकड़ी का संकट निरंतर बढ़ता ही जा रहा है, देश की लगभग 8 लाख हेक्टेयर भूमि प्रतिवर्ष बीहड़ होती जा रही है। खनिज उत्पादन से फसल और वन चौपट होते जा रहे हैं, गांव के गांव वीरान हो रहे हैं, झीलें सूख रही हैं नदी के पानी के प्रदूषण के फलस्वरूप मछुआरों का जीवन अनिश्चित हो रहा है, देश में प्रतिवर्ष 13 लाख हेक्टेयर वन नष्ट हो रहे हैं।

वनों के विनाश से वन जीव भी लुप्त होते जा रहे हैं। भारतीय चीता जो अपनी गति और शान के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध था आज पूरी तरह से लुप्त प्राय: हो गया है। आदिवासियों की जीवन शैली भी प्रभावित हो रही है। उनका सामाजिक जीवन और अर्थतंत्र वनों के अस्तित्व पर निर्भर था। वनों के कन्दमूल उनका पोषण करते थे, वनों की जड़ी-बूटियां उन्हें निरोग रखती थी पर आज वनों के कटने से वे शहरों की ओर भागने को मजबूर हो गये हैं।

आजादी के बाद देश में वनों के विकास के बारे में सरकारी स्तर पर एक चेतना आई और साल भर बाद ''अधिक वृक्ष लगाओ'' जैसा एक सरकारी अभियान दृष्टिगत हुआ। 1950 में केन्द्रीय सरकार में कृषि मंत्री के. एम. मुंशी ने इस समूचे अभियान को एक नई संज्ञा दी ''वन महोत्सव'' और औपचारिक रूप से देश में वन महोत्सव की परंपरा तब से अब तक जारी है।

उत्तर भारत में हिमालय के दु:खद वन विनाश के खिलाफ पहाड़ की महिलाओं ने जो आंदोलन छेड़ा, वह अनुकरणीय है। चिपको आंदोलन अब काफी आगे बढ़ चुका है। न्यूजीलैंड के 91 वर्षीय डा. रिचर्ड सेंट बर्वेबेकर जिन्हें प्राय: ''वृक्ष-मानव(मैन आफ दी ट्रीज़)'' नाम से जाना जाता है, चिपको आन्दोलनकारियों को बधाई देने भारत तक आए थे। केरल की मूक घाटी (साइलेंट वेली) ने भी राष्ट्र का ध्यान पर्यावरण संरक्षण की ओर आकर्षित किया है।

जन कल्याण के उद्देश्य से सामाजिक-आर्थिक प्रणाली को बनाए रखने के लिए पर्यावरण की सुरक्षा उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना की आर्थिक विकास। पहला व्यावहारिक कदम वन संरक्षण अधिनियम 1980 के रूप में उठाया गया, जिसमें केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति के बिना और गैर वन्य कार्यों के लिए वन भूमि का इस्तेमाल करने पर प्रतिबंध लगाया गया है। अधिनियम के प्रावधानों को और कठोर बनाने के उद्देश्य से 1988 में इस अधिनियम में संशोधन किया गया।

केन्द्रीय प्रायोजित योजना ''जैव हस्तक्षेप से वनों की रक्षा-बुनियादी सुविधाओं का विकास'' के अंतर्गत आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाती है। राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों को 9.03 करोड़ रुपये उपलब्ध कराये जा चुके हैं। वर्ष 1992-93 के लिए, 3.25 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन राज्य मंत्री श्री कमलनाथ ने निर्देश दिया की प्रतिपूरक वनीकरण योजना इस तरह तैयार की जानी चाहिए कि दो वर्ष के अंदर ही सारा कार्य पूरा किया जा सके। इसके अंतर्गत 1,41,000 हेक्टेयर भूमि पर प्रतिपूरक वन लगाए जा चुके हैं तथा वर्ष 1993 के मानसून के मौसम के दौरान एक लाख हेक्टेयर भूमि पर वन लगाने की योजना है।

विश्वविद्यालय अनुदान अयोग ने पर्यावरण संबंधी शिक्षा और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया है। देश के कुछ विश्वविद्यालय पर्यावरण विज्ञान में जैविक अथवा भौतिक विज्ञान संबधी पहलुओं को महत्व देते हुए

मास्टर डिग्री पाठयक्रम की व्यवस्था कर रहे हैं। इनमें जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली; ए.पी. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा; सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट; मदुरै विश्वविद्यालय और नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, शीलांग सम्मिलित हैं। अन्य कुछ विश्वविद्यालयों ने तो अपने सामान्य स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में भी पर्यावरण शिक्षा को समाविष्ट कर दिया है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी, राज्य वन सेवा कालेज और वन रेंजर कालेज वन कार्मिकों को वन के प्रबंध के विभिन्न पहलुओं के बारे में प्रशिक्षण देते हैं।

सातवीं पंचवर्षीय योजना की तुलना में आठवीं योजना के दौरान दुगने से भी अधिक क्षेत्र में वन लगाए जाएंगे। आठवीं योजना में एक करोड़ 80 लाख अतिरिक्त हेक्टेयर क्षेत्र में वन लगाने का प्रस्ताव है, जबकि पिछली योजना के दौरान 82 लाख हेक्टेयर भूमि पर वन लगाए गए थे। इससे न केवल वन क्षेत्र बढ़ेगा बल्कि ग्रामीण एवं आदिवासी लोगों के लिए जलाऊ लकड़ी और चारा भी आसानी से उपलब्ध हो सकेगा। राष्ट्रीय बंजर भूमि बोर्ड ने इस उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एकीकृत बंजरभूमि विकास परियोजना कार्यक्रम के अंतर्गत 45 करोड़ रुपये की राशि जारी की है, जबकि पिछले वर्ष इसी परियोजना के अंतर्गत 24 करोड़ रुपये की राशि आबंटित की गई थी।

देश में बंजर भूमि सहित विभिन्न प्रकार की भूमियों पर वृक्षारोपण का लक्ष्य हर वर्ष केन्द्र तथा राज्यों की योजनाओं में निर्धारित धनराशि के अनुसार तय किया जाता है। वर्ष 1990-91 तथा 1991-92 के दौरान क्रमशः 13 लाख 90 हजार तथा 16 लाख हेक्टेयर से अधिक भूमि में पेड़ लगाने तथा 145 करोड़ पौध वितरित करने का लक्ष्य रखा गया है।

दुनिया भर में बढ़ते हुए प्रदूषण की रोकथाम के लिए आज पूरे संसार के वैज्ञानिक, राजनीतिक व आम व्यक्ति बड़ी गंभीरता के साथ इस समस्या से निपटने का उपाय सोचने में मग्न हैं। लेकिन सफलता की गति काफी कम हैं। सन् 1900 में विश्व में वनों का क्षेत्रफल 700 करोड़ हेक्टेयर के करीब था सन् 1975 में मात्र 289 करोड़ हेक्टेयर जमीन में ही जंगल बचे थे। सन् 2000 तक दुनिया में मात्र 237 करोड़ हेक्टेयर में ही जंगल रह जाएंगे। केवल 12 प्रतिशत भूमि पर ही वन बचे रहने की सच्चाई है, जबकि कम से कम 30 प्रतिशत जमीन पर जंगल जरूर होने चाहिए।

वनरोपण की गति को तीव्र करने के लिए यह आवश्यक है कि हम वन महोत्सव कार्यक्रम को प्रभावी रूप से आगे बढ़ायें। बच्चे के लिए एक पेड़ का नारा आज की एक प्रबल आवश्यकता है, इस नारे को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि सड़कों, नहरों, रेलवे लाइनों के किनारे एवं जहां कहीं भी सुविधा से वृक्षारोपण किया जा सके हम इसे प्रोत्साहित करें। सरदार पटेल के शब्दों में "यदि हमें रेगिस्तान के बढ़ते हुए प्रसार को रोकना है और मानव सभ्यता की रक्षा करनी है तो वन सम्पदा के क्षय को अवश्य ही रोकना होगा"।

सामाजिक वानिकी का वृहद् कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता है। विस्तार वानिकी के अंतर्गत नहर की पटरियों, रेलमार्गों और सड़कों के किनारे पेड़ लगाए जाएं, शहर वानिकी के अंतर्गत, पार्क, छोटे वन प्रखण्ड और हरी पट्टियों का निर्माण किया जाए। आरक्षित वनों में ईमानदार और निष्ठावान वन अधिकारी रखे जाए। वन विकास निगम या ऐसी ही अन्य संस्थाएं हों जो पहाड़ों पर, मैदानों में तथा उन क्षेत्रों में जहां से वन कट गए हों, वृक्षारोपण करें। आदिवासियों का जीवन वनों पर आधारित है, अतः उनके विकास के लिए अन्य काम धंधे शुरू किए जाएं। वृक्षारोपण कार्यक्रम को और अधिक व्यवस्थित ढंग से चलाया जाए। स्कूल-कालेज स्तर पर जागरूकता उत्पन्न की जाए।

भूमि सुधार, सिंचाई, नगर नियोजन, झुग्गी-झोंपड़ियों को स्वच्छ रखने, गृह निर्माण योजना, छूत की बीमारियां व धूम्रपान नियंत्रण, तथा आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने हेतु कानूनों को प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित कराना तथा केंद्र सरकार जनसाधारण के हित में कल-कारखानों पर नियंत्रण रखे ताकि वे पर्यावरण को प्रदूषित न करें।

वनों के नष्ट करने की समस्या को गंभीरता से लेते हुए शैक्षिक कार्यक्रम की योजना का निर्माण करने की आवश्यकता है, जिसमें वनों के आसपास रहने वाले नागरिकों को सामाजिक कार्यक्रमों के माध्यम से वनों से होने वाले लाभ के बारे में बोध कराने का सफल प्रयास किया जाना चाहिए। अनौपचारिक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों एवं विस्तार सेवा के माध्यम से विभिन्न सामाजिक प्रवृत्तियों में ग्रामीण जनता को संलग्न कर वनों के पेड़ों एवं वन जीवों की सुरक्षा के बारे में पारित अधिनियम, कानूनी प्रावधान एवं संविधान में प्रदत्त अधिकार एवं कर्तव्यों के बारे में ग्रामीण जनता को अवगत कराया जाना चाहिए। वनों के बारे में राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा पारित कानूनों का ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

जंगलों को सुरक्षित रखने से भूमि, जल प्रदूषण से बचाव, चरागाह का विकास आदि प्रमुख बातों की जानकारियां

शेष पृष्ठ 38 पर

लघुकथा

भाग्य का फेर

✍ शैफाली

गरीबा ने जिस दिन से जन्म लिया था उसी दिन से बदनसीबी के कांटे उसके जीवन में बिछ गये थे। जन्म लेते ही उसके पिता चल बसे और गुर्बत ने घर की रही सही खुशहाली भी छीन ली। ऊपर से पण्डित जी ने पत्रा देखकर उसकी मां को बता दिया कि उसका बेटा जीवन भर दुख और गरीबी से जूझता रहेगा। घर का पहला पुत्र था, सुनते ही माँ के पैरों तले की धरती खिसक गई। गाँव भर में गरीबा की शक्ल देखना भी अपशकुन बन गया। पांच साल का हुआ नहीं कि बेचारे की मां भी परलोक सिधार गई। ज्योतिषी का वचन पक्का निकला।

यथा नाम तथा गुण। गरीबा को उसका मामा अपने साथ ले गया जो शहर में किसी व्यापारी का पल्लेदार था। दस साल का होते होते वह भी टोकरी ढोने लगा। मोटा झोटा पहन कर रूखा सूखा खाकर गरीबा जवान और फिर प्रौढ़ हो गया। शादी विवाह तो क्या होता। मोहल्ले के बच्चों को ही वह अपना मान कर प्यार लुटाता। गरीबा को सब नेक इंसान मानते थे। पर उसे अपने अभागे होने का दुख रात दिन सालता था। सेठ उसकी ईमानदारी से बहुत खुश था।

सेठ का दिसावर का काम था। वह जहाज में माल भरकर विदेशों को ले जाता और वहां से दूसरा माल लाकर बेचता था। राज दरबार में भी उसकी अच्छी साख थी। एक दिन सेठ ने कहा, ''गरीबा तू भी कोई छोटी-मोटी दूकान कर ले, जिंदगी सुधर जाएगी। गरीबा ने इसे सेठ की भलमनसाहत समझ कर कोई ध्यान नहीं दिया। फिर उसे अपने अभागेपन का भी अहसास था। कई बार जब सेठ ने कहा तो एक दिन गरीबा चार-पांच नींबू अपने आंगन के पेड़ से तोड़ लाया और सेठ से बोला,'' मैं तो दुकानदारी जानता नहीं ये नींबू आप ही बेच दें, जो मिले मुझे दे देना।''

सेठ को गरीबा के भोलेपन पर मन ही मन हंसी आई पर उसने उसका मन रखने को नींबू जेब में डाल लिए। इतना बड़ा सेठ चार नींबू क्या बेचता। संयोग से सेठ का जहाज माल भरकर रवाना होने वाला था। वह नींबू जेब से निकालना भूल गया और उनके साथ ही रवाना हो गया।

जहाज किसी द्वीप पर जाकर रुका। सेठ और उसके कर्मचारी द्वीप पर जाकर उतरे तो वहां अजीब आलम था। जिसे देखो मुंह लटकाए घूम रहा है। सबको परेशान देखकर सेठ ने अपने स्थानीय दलाल से पूछा ''माजरा क्या है जो पूरा शहर परेशान है।''

सेठ के दलाल ने बताया कि यहां का राजा बीमार है। रोग किसी हकीम के काबू में नहीं आ रहा है। पानी के जहाज महीनों समुद्र में रहते थे। इस लिए सेठ लोग अपने साथ वैद्य और दवाइयां लेकर चलते थे। इस सेठ ने भी अपने वैद्य को लिया और राजा के महल में पहुंच गया। वैद्य ने निरख परख कर बताया कि मामला तो गम्भीर है पर यदि नींबू मिल जाए तो इलाज हो सकता है। उस द्वीप में नींबू पैदा ही नहीं होता था इसलिए इलाज मुश्किल था। एक बार तो सेठ भी परेशान हुआ पर उसे याद आया कि चलते समय उसने अपनी जेब में चार नींबू रखे थे। वे कहीं जरूर होंगे। तलाश किया तो वे मिल गए।

वैद्य ने दवा में नींबू का रस निचोड़ कर राजा को पिलाया तो उसे कुछ आराम पड़ा। अगले दिन दूसरे नींबू का रस दे दिया तो राजा चंगा हो गया। वह सेठ से बहुत प्रसन्न हुआ और इलाज के खर्च के रूप में चार अशर्फी दी। सेठ ईमानदार था। उसने गरीबा की अशर्फियों में से एक को भुनाकर प्याज भर ली। चलते चलते वे एक और द्वीप पर पहुंचे तो वहां हैजे से सारा शहर त्रस्त था। यहां तक कि सेठ के स्थानीय प्रतिनिधि ने कहा कि उसके कर्मचारी द्वीप पर न उतरें। सेठ को इस द्वीप से दाना पानी भी लेना था। बड़ी परेशानी हुई। उसने अपने वैद्य से पूछा तो उसने कहा कि कोई मुश्किल नहीं प्याज का रस हैजे की अचूक दवा है।

संयोग की बात इस द्वीप पर प्याज नहीं होती थी और सेठ ने जहाज में प्याज भरी थी। उसने वहां के राजा से कहलाया कि वह सभी रोगियों का उपचार करा सकता है। अंधे को क्या चाहिए- दो आंखें । राजा ने तुरंत सेठ को बुलवाया और लोगों का इलाज कराने के लिए कहा। खुद राजा के परिवार में यह रोग घुस गया था। एक दो दिन में सारा शहर रोगमुक्त हो गया तो राजा ने प्रसन्न होकर सोना और चांदी सेठ को उपहार में दी।

जब जहाज स्वदेश पहुंचा तो राजा ने गरीबदास को अपने पास बुलाया और उसे उसकी अमानत सौंप दी। इस तरह भाग्य का मारा कंगाल गरीबा सेठ गरीबदास बन गया।

ए-36-बी-डी डी ए फ्लैट्स
मुनीरका, नई दिल्ली-110067

पर्यावरण संरक्षण में उन्नत चूल्हों की भूमिका

✍ ललन कुमार प्रसाद

पूरा विश्व ऊर्जा संकट का सामना कर रहा है। लेकिन यह संकट भारत में कुछ ज्यादा ही है। दरअसल इस धरती पर उपयोग होने वाली कुल लकड़ी का 50 से 70 प्रतिशत भाग तक केवल खाना बनाने में प्रयोग किया जाता है और हमारा देश बहुत बड़ा है तथा हम में से अधिकतर लोग लकड़ी के ईंधन पर आश्रित हैं। बात यह है कि भारतीय गांवों में जो ऊर्जा इस्तेमाल होती है उसका 10 प्रतिशत भाग खाना बनाने में काम आता है और हमारे गांवों की लगभग एक तिहाई आबादी के लिए ऊर्जा का मुख्य स्रोत लकड़ी ही है। इतना ही नहीं हमारे देश में लकड़ी जलाने के तरीके अत्यन्त अपव्ययी हैं। इस प्रकार हम एक तरफ आवश्यकता से अधिक लकड़ी जलाते हैं तो दूसरी तरफ हम अपने वनों तथा कुदरती हरियाली को भी नष्ट करते जा रहे हैं।

दरअसल भारत गांवों का देश है। यहां लगभग साढ़े पांच लाख गांव हैं, जहां पर प्रति वर्ष 7.7 करोड़ टन ईंधन जलाया जाता है। इसमें से 2.35 करोड़ टन लकड़ी है और शेष ईंधन गोबर तथा खेती के छीजन, झाड़ी, अरहर की डन्ठल, खोई, पुआल, पेड़ों की पत्तियों से प्राप्त होता है। राष्ट्रीय व्यवहारिक अनुसंधान परिषद के अनुसार इसमें से 50 लाख टन लकड़ी वनों से प्राप्त की जाती है। इसका दुष्परिणाम है कि देश के कुल क्षेत्र के केवल 11 प्रतिशत भू-भाग में ही जंगल रह गये हैं जबकि प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने के लिए कुल भौगोलिक क्षेत्र के कम से कम 33 प्रतिशत भाग में जंगल होने अनिवार्य हैं। जंगल की इस कमी के कारण धरती नंगी होती जा रही है, जिससे मिट्टी को बांधने वाला माध्यम खत्म होता जा रहा है और उपजाऊ मिट्टी की परत भूक्षरण द्वारा नष्ट होती जा रही है। फलस्वरूप खेतों की उर्वरशक्ति कम होती जा रही है। ऐसी जमीन पशुओं के चराने योग्य ही रह जाती है और यदि उस पर लगातार चराई होती रहती है तो बाद में वह चरागाह के योग्य भी नहीं रहती और रेगिस्तान में बदल जाती है। फलस्वरूप ईंधन की समस्या और जटिल होती जा रही है। लेकिन उपजाऊ भूमि के रेगिस्तान में परिवर्तन की यह क्रिया इतनी धीमी होती है कि इसका पता आदमी को बहुत बाद में चल पाता है।

परम्परागत चूल्हों के प्रयोग द्वारा ऊर्जा के व्यर्थ नष्ट होने और लगातार घट रहे ऊर्जा के परम्परागत स्रोतों को ध्यान में रख कर उन्नत चूल्हों का विकास किया गया है, जिससे कि ऊर्जा के अपव्यय को रोका जा सके।

अब प्रश्न उठता है कि उन्नत चूल्हा है क्या ? उन्नत चूल्हा कोई नई युक्ति नहीं है। यह तो केवल परम्परागत चूल्हे में वैज्ञानिक परिवर्तन है जिससे कि ईंधन का सही दहन और ऊष्मा का सही परिचलन हो सके तथा विकिरण एवं संवहन के कारण ऊष्मा का नुकसान कम-से-कम हो। उन्नत चूल्हे देखने में मोटे तौर पर वैसे ही लगते हैं जैसा कि आम तौर पर घरों में इस्तेमाल किये जाने वाले परम्परागत चूल्हे होते हैं। परन्तु इनकी बनावट में कुछ अन्तर होता है। परम्परागत चूल्हों की बनावट में कुछ इस तरह से सुधार कर उन्नत चूल्हे बनाये गये हैं कि इनकी तापीय क्षमता बढ़ गयी है और धुएं की समस्या का निदान हो गया है। ये लगभग 20 माडलों में उपलब्ध हैं, जिन्हें भारत सरकार ने जांच के बाद स्वीकृति दे दी है। ये चल और अचल दोनों प्रकार के होते हैं।

भारत की लगभग 70 प्रतिशत आबादी यानी 61.6 करोड़ गांवों में रहती हैं, जबकि वर्तमान समय में हमारे देश की आबादी 88 करोड़ है। फिर हमारे देश में खाना पकाने का काम प्रायः महिलायें करती हैं। इस तरह भारत के लगभग 8.5 करोड़ परिवारों में लगभग 12.5 करोड़ महिलायें अपने जीवन का चौथाई भाग गंदी तथा धुंधली रसोई घरों में गुजार देती हैं। दरअसल परम्परागत चूल्हों के इस्तेमाल से रसोई घर का धुआं केवल रसोई में ही नहीं, वरन् पूरे घर में भर जाता है। ये चूल्हे न केवल धुआं देते हैं, वरन् ईंधन अधिक खाते हैं। इनसे प्राप्त ईंधन शक्ति का कुछ ही भाग खाना पकाने में काम आता है। बात यह है कि आम तौर पर परम्परागत चूल्हों की तापीय क्षमता 5 से 10 प्रतिशत तक होती है और इनमें से कुछ की तो मात्र 2 प्रतिशत ही होती है। किन्तु उन्नत चूल्हों की तापीय क्षमता 15 से 25 प्रतिशत तक होती है। दरअसल परम्परागत चूल्हों की बनावट में ही कुछ वैज्ञानिक परिवर्तन करके उनकी तापीय क्षमता बढ़ा दी गयी है। परम्परागत चूल्हों का ही सुधरा हुआ रूप है उन्नत चूल्हा। ईंधन के पूर्ण दहन से, लौ से बर्तन तक अधिकाधिक ताप के स्थानान्तरण से और वातावरण में ताप के कम-से-कम क्षय से उन्नत चूल्हों की तापीय क्षमता में दो गुना से भी अधिक की वृद्धि

हो जाती है। इसलिए यदि उन्नत चूल्हों का इस्तेमाल किया जाये तो आज जितनी ईंधन की खपत होती है उसका 50 प्रतिशत बचाया जा सकता है। यदि यह औसत 35 प्रतिशत भी मान लिया जाये तो देश में लगभग 86.2 लाख टन ईंधन-लकड़ी की बचत की जा सकती है। परीक्षणों से यह बात साबित हो चुकी है कि यदि उन्नत चूल्हों का इस्तेमाल सही तरीके से किया जाये तो प्रति चूल्हा प्रति वर्ष 1000 किलाग्राम लकड़ी की बचत की जा सकती है। यदि मान लिया जाय कि एक पेड़ से लगभग एक चौथाई टन लकड़ी प्राप्त होती है तो उन्नत चूल्हों का इस्तेमाल कर लगभग 3 करोड़ 50 लाख वृक्ष प्रति वर्ष कटने से बचाये जा सकते हैं।

फलत: उन्नत चूल्हा अपनाकर वृक्षों की कटाई पर बहुत हद तक अंकुश लगाया जा सकता है और पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है, क्योंकि वृक्ष ही सर्वश्रेष्ठ प्रदूषक नियंत्रक है। कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता के वैज्ञानिक डा. टी. एन. दास और भारतीय वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के वैज्ञानिकों के मतानुसार एक वृक्ष अपने 50 वर्षों के जीवनकाल में लगभग पांच लाख रुपये मूल्य के बराबर प्रदूषण का नियंत्रण करता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार एक हेक्टेयर वन क्षेत्र द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 3.7 टन कार्बन डाइआक्साइड सोखी जाती है और बदले में दो टन आक्सीजन प्राप्त होती है। वृक्ष आश्चर्यजनक रूप से शोर प्रदूषण कम कर देते हैं।

परम्परागत चूल्हे को सुलगाना कोई आसान काम नहीं है। अगर काफी सर खपाने के बाद ये सुलग भी जाते हैं तो बेहद धुआं देने लगती है, जिससे खाना पकाने वाली महिलाओं की आंख, कान और फेफड़ों पर बुरा असर पड़ता है। विशेष कर उनकी आंखें और फेफड़े रोगग्रस्त हो जाते हैं। फलस्वरूप भारी संख्या में महिलाएं नेत्ररोग, यक्ष्मा (टी.बी.) और कैंसर की शिकार हो जाती हैं। लेकिन उन्नत चूल्हों से धुआं बिल्कुल नहीं होता, जिसके कारण खाना पकाने वाली महिलाओं की आंखें, नाक और फेफड़े धुंए के बुरे असर से बच जाते हैं।

परम्परागत चूल्हे पर रखे बर्तन धुआंयुक्त आग की लपटों के कारण बेहद काले पड़ जाते हैं जिसको हटाने हेतु बर्तनों को खूब रगड़-रगड़ कर मांजना पड़ता है। इसके लिए न केवल मेहनत अधिक करनी पड़ती है, वरन् बर्तनों का घिसाव भी अधिक होता है। फलत: बर्तन अधिक दिनों तक नहीं टिकते हैं। अत्यधिक धुएं, कालिख और राख के कारण हाथ और कपड़े अधिक गन्दे हो जाते हैं, जिससे साबुन और डिटर्जेंट की खपत बहुत अधिक बढ़ जाती है। धुएं के कारण रसाईघर की दीवारें और छत काली पड़ जाती है, जिससे रसोई घर का स्वरूप बिगड़ जाता है। लेकिन उन्नत चूल्हे को अपनाने से ये सब परेशानियां दूर हो जाती हैं। परिणामस्वरूप रसोईघर का वातावरण स्वच्छ और खुशनुमा बना रहता है।

लेकिन प्रत्येक ग्रामीण परिवार को उन्नत चूल्हा अपनाने के लिए राजी कर लेना कोई आसान कार्य नहीं है। इसके लिए सरकारी और गैरसरकारी दोनों स्तरों पर जोरदार प्रयास करना होगा, क्योंकि ग्रामवासियों में ईंधन की बचत और पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना का बहुत अभाव है। वे इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि लकड़ी और गोबर को घरेलू ईंधन की तरह जलाने से राष्ट्र को भारी हानि उठानी पड़ रही है। इसलिए ग्रामवासी लकड़ी और गोबर के संरक्षण पर कोई ध्यान नहीं देते हैं। फिर शहरी क्षेत्रों में खाना पकाने हेतु ईंधन की जरुरत को पूरा करने के लिए बहुत प्रयास किये गये हैं। वहां खनिज कोयला, खाना पकाने वाली गैस, मिट्टी का तेल इत्यादि की कोई खास कमी नहीं रहती है। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। फलस्वरूप गांवों में खाना पकाने के लिए आज भी लकड़ी, उपले और खेती के छीजन ही ईंधन के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। इसके दो कारण हैं-एक कि गांवों में खनिज कोयला और खाना पकाने की गैस उपलब्ध नहीं है। थोड़ा-थोड़ा मिट्टी का तेल उपलब्ध हो पाता है; परन्तु इसकी मात्रा इतनी थोड़ी होती है कि उससे रोशनी की जरूरत भी पूरी नहीं हो पाती, ईंधन के रूप में इस्तेमाल करना तो दूर की बात है। दूसरा कारण है कि गांवों में जलाने के लिए लकड़ी और गोबर मुफ्त में मिल जाता है। वहां पर ये चीजें न खरीदी जाती हैं न बेची जाती हैं।

वास्तव में उन्नत चूल्हों के इस्तेमाल से एक तरफ जहां ईंधन की भारी बचत होती है, वहीं दूसरी तरफ धुएं से राहत, बर्तन, कपड़े तथा शरीर का कम काला होना, समय की बचत, पर्यावरण संरक्षण इत्यादि कई फायदे भी होते हैं। अत: हर ग्रामीण परिवार को उन्नत चूल्हे का ही इस्तेमाल करना चाहिए, परम्परागत चूल्हे का नहीं। इसलिए यदि गामीण जनता चाहती है कि पर्यावरण प्रदूषित न हो तथा भावी पीढ़ी को भी स्वच्छ वातावरण मिले तो उन्हें अविलम्ब अपने घरों में खाना बनाने के लिए परम्परागत चूल्हे के स्थान पर चल या अचल या दोनों प्रकार के उन्नत चूल्हे अविलम्ब अपना लेने चाहिए।

शिव मन्दिर के बगल में
बाकरगंज, बजाजा गली
बांकीपुर,
पटना-800 004

ग्रामीण विकास और सहकारिता आन्दोलन

✍ हरि

सहकारिता का सीधा अर्थ है- परस्पर सहकार यानि कि सहयोग। मिल-जुल कर कोशिश करने से बहुत-सी समस्याएं हल हो सकती हैं तथा असम्भव लगने वाले कार्य लगभग किए जा सकते हैं। यही सामाजिक सहकारिता का मूलाधार भी है। किसी महान विचारक ने कहा है कि - "जिस प्रकार अलग अलग बिखरी हुई जल की बूंदे सूखकर नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार अकेले व्यक्ति का भी अस्तित्व ज्यादा समय तक नहीं ठहरता। वहीं बूंदें मिलकर महासागर बन जाती हैं। अत: हमें परस्पर मेल जोल के महत्व की प्रेरणा लेकर ही अपना हर काम करना चाहिए।

सहकारिता का मतलब नैतिक उद्देश्यों के लिए खुद मिल जुलकर ऐसे सामूहिक प्रयास करना है जिससे सामूहिक हित समुन्नत होते हों। दूसरे शब्दों में कहा जाए कि "यह काम करने का ऐसा सदाचार पूर्ण तरीका है जिसमें पूंजी के स्थान पर मानव को महत्व दिया जाता है। किसी प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी और सहकारी संस्था में यही सबसे बड़ा बुनियादी अन्तर होता है कि कम्पनियों के शेयर होल्डरों का मताधिकार उनके शेयरों की संख्या पर निर्भर करता है। जबकि सहकारी संस्था में प्रत्येक अंशधारक को केवल एक मत का अधिकार ही होता है। चाहे उसके पास कितने ही अंश क्यों न हों। यही कारण है कि हमारे देश में सन् 1904 में गरीब किसानों के लिए सहकारिता का जो बिगुल बजना शुरू हुआ था उसका स्वर आज भी विभिन्न क्षेत्रों में साफ सुनाई देता है। सहकारिता निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित है तथा जनता के लिए यह जनता का आन्दोलन है।"

सहकारिता के सिद्धान्त हैं :-

1. खुली एवं स्वैच्छिक सदस्यता, 2. लोकतान्त्रिक प्रबन्ध संचालन, 3. पूंजी पर सीमित ब्याज, 4. आर्थिक लाभ (बचत) का समुचित वितरण या उपयोग, 5. सहकारी शिक्षा का प्रावधान, 6. सहकारी संस्थाओं में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा।

सहकारिता का विस्तार

सहकारिता के आधार पर अनेक क्षेत्रों में सफलता मिली है। समस्याएं सुलझी हैं और शोषण तथा मुनाफाखोरों का अवांछित वर्चस्व समाप्त करने में बहुत सी उपलब्धियां रहीं हैं। यही कारण है कि महानगरों में जहां एक ओर सुपर बाजारों के उदाहरण हैं तो दूसरी ओर आवास की समस्या दूर करने की दिशा में सहकारी समितियों की भूमिका सराहनीय रही है। गुजरात के अमूल दूध उत्पादन ने जहां एक ओर सहकारी क्षेत्र में अपना सिक्का जमाया है तो दूसरी ओर इफ्को और कृभको के विशाल उर्वरक कारखाने कृषकों को आश्वस्त कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त 'कैम्पको' ने आधुनिकतम चाकलेट टेक्नोलॉजी में देश का गौरव बढ़ाया है। इसके अलावा भी सहकारिता अनेक क्षेत्रों में तेजी से आगे बढ़ रही है।

सहकारिता की परिधि में आ चुके क्षेत्र

कृषि ऋण एवं बैंकिंग, हथकरघा, दुग्ध उत्पादन, विपणन आदि उद्योग, श्रम संविदा, समाचार एजेंसी एवं समाचार पत्र प्रकाशन, उर्वरक उत्पादन संयंत्र, मत्स्य उद्योग, उपभोक्ता, आवास।

सहकारी समितियों की सदस्यता ग्रहण करने के लिए स्वेच्छा सर्वोपरि रहती है। बिना किसी दबाव, प्रतिबन्ध और भेद भाव के हर उस व्यक्ति के लिए सहकारी संस्थाओं के द्वार खुले रहते हैं, जो सहकारी अधिनियम के अन्तर्गत सदस्यों हेतु निर्धारित की गई योग्यताएं रखता है। मोटे तौर पर वह वयस्क और स्वस्थ चित्त हो तथा दिवालिया अथवा अपराधी न हो। प्राय: सदस्य भी तीन प्रकार के होते हैं।

1- व्यक्तिगत सदस्य 2- संस्थागत सदस्य 3- नाममात्र के सदस्य।

हमारे देश में निर्बल वर्ग के लिए तो सहकारिता वरदान सिद्ध हुई है। छोटी छोटी ताकतें मिलकर जब एक बड़ी शक्ति के रूप

में काम करती हैं तो वह कहीं ज्यादा सक्षम होती हैं। सहकारिता के आधार पर चल रही चीनी मिल, कोल्ड स्टोर तथा अन्य बड़ी संस्थाएं इस बात की प्रतीक हैं कि छोटे किसान भी बड़े काम कर सकते हैं। इससे हमारी अर्थव्यवस्था को भी लाभ मिला। लेकिन इस आन्दोलन को बहुत से आघात भी समय समय पर लगते रहे हैं जिनके कारण सहकारी विकास की गति और दिशा इतनी अच्छी नहीं हो सकी जितना कि उसे होना चाहिए था। आज सहकारी संस्थाओं के सामने बहुत सी बाधाएं हैं। सहकारिता में अवरोध पैदा करने वाले कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार से हैं:-

निष्क्रिय सदस्यता, अनावश्यक हस्तक्षेप, गुटबाजी, सहकारी शिक्षण की कमी, जन-प्रेरणा का अभाव, सहकारी ऋणों की वसूली की समस्या, गड़बड़ियों को रोक पाने की विफलता, धूमिल होती छवि, निचले स्तर पर मजबूती का अभाव, परम्परागत ढंग से प्रबन्ध संचालन।

सहकारी आन्दोलन का लगातार विकास हो, इसके लिए आवश्यक है कि सहकारिता के अन्तर्गत काम कर रहे सभी कार्यकर्ता इस बात का संकल्प लें कि पूर्ण निष्ठा, ईमानदारी और सबकी भलाई के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर कार्य करेंगे। सहकारी क्षेत्र में सबसे बड़ी कमी है - सहकारी कार्यकर्ताओं में व्याप्त उदासीनता। वे नहीं जानते कि उनके अधिकार और कर्तव्य क्या हैं। जबकि यह उन्हें सबसे पहले जानना चाहिए।

सहकारी सदस्यों के अधिकार

- समिति की आम सभा की बैठक में भाग लेना।
- चुनाव या समिति के किसी निर्णय पर अपना वोट देकर राय जाहिर करना।
- संचालक पद हेतु खड़े होकर एवं मतदान द्वारा समिति के साधारण सभा के सदस्यों का विश्वास प्राप्त कर प्रबन्ध में निरंकुशता व स्वैच्छाचारिता खत्म करने तथा कार्यशील व कुशल नेतृत्व देने में हाथ बंटाना।
- सदस्यों के हित में समानता के सिद्धान्तों पर सहकारी समिति की नियमावली में संशोधन करना।
- सहकारी समिति के कारोबार संबंधी मामलों व विवादों का पंच-फैसलों द्वारा हल करना।
- अपनी खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए उन्नतशील बीज, खेती संबंधी यन्त्र, खाद, कीटनाशक व रोज के इस्तेमाल की चीजें प्राप्त करना।
- सहकारी समिति के द्वारा खेती की उपज को बेचना तथा बिकने के समय तक जरूरत पड़ने पर काम चलाने लायक अग्रिम धनराशि प्राप्त करना।
- सहकारी शिक्षा प्राप्त करना और समिति के लेखों व कागजात को देखना व उसकी प्रतिलिपि प्राप्त करना।
- अपने उत्तराधिकारी का नाम समिति में दर्ज करना।
- सहकारी समिति से अपना लाभांश पाना।
- समिति के 1/3 सदस्यों की लिखित मांग पर समिति के प्रबन्ध, कारोबार व माली हालत की जांच करना।
- सहकारी अधिनियम की धारा 70-71 के अधीन दिए गए फैसले/अभिनिर्णय के खिलाफ अपील व मध्यस्थ निर्णय की कार्यवाही हेतु प्रार्थना पत्र देना।

सदस्यों के कर्तव्य

1- समिति से मिले कर्जे का इस्तेमाल उसी काम में करना जिसके लिए कर्जा मिला है।

2- समिति के कर्जे को खुद समय से चुकाना, दूसरे सदस्यों को भी ऐसा करने की प्रेरणा देना।

3- बचत और मित्तव्ययता के आधार पर अपना उत्पादन कार्यक्रम चलाना और दूसरे सदस्यों को भी ऐसा करने की प्रेरणा देना व अपनी बचत को समिति में रखना।

4- सहकारी समिति के साथ नियमित रूप से अपना लेन-देन व क्रय-विक्रय करना।

5- समिति की बैठक में उपस्थित होना। समिति में योग्य व्यक्ति को चुनकर भेजना और दूसरी समिति में प्रतिनिधित्व के लिए भी योग्य व्यक्ति को चुनना।

हमारे देश में 93 हजार से भी अधिक प्राथमिक स्तर की कृषि ऋण सहकारी समितियां ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं, जिनके सदस्यों की संख्या लगभग दस करोड़ हो गई है। इन समितियों ने गत वर्ष करीब 5 हजार करोड़ रुपये के अल्पकालीन ऋण वितरित किए थे। मण्डी स्तर पर 7000 विपणन सहकारी समितियों का नेटवर्क हैं तथा इनके अतिरिक्त 161 जिला स्तर की केन्द्रीय सहकारी समितियां, 29 राज्य स्तरीय विपणन समितियां हैं। देश में 60 हजार औद्योगिक सहकारी समितियां, 105 सहकारी कताई मिलें, 60 हजार दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियां तथा 8530 मत्स्य पालकों की सहकारी समितियां कार्य

कर रही हैं।

सहकारिता आन्दोलन के विकास के लिए प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी विकास निगम के अलावा कृषि विपणन, सहकारी विकास बैंक, सहकारी चीनी मिलें, उपभोक्ता संघ औद्योगिक समितियां, सहकारी कताई मिलों, सहकारी आवास, डेरी विकास, मत्स्य पालन, सहकारी श्रमिक समितियों तथा तम्बाकू उत्पादकों के महासंघ कार्य कर रहे हैं। देश में कार्मिकों हेतु सहकारी प्रशिक्षण और सदस्यों हेतु शिक्षा के लिए राष्ट्रीय सहकारी यूनियन कार्यरत है।

भारत में सहकारिता आन्दोलन के सन्तुलित विकास के लिये यह आवश्यक है कि उसकी परिधि में आने वाले सदस्य सक्रिय निष्ठावान, सहयोगी, उदार तथा परिश्रमी हों। सहकारी संस्थाओं में सरकारी हस्तक्षेप कम से कम हो। युवाओं तथा महिलाओं की भागीदारी अधिक से अधिक हो तथा प्रत्येक स्तर पर सफल एवं आदर्श सहकारी संस्थाओं का अनुकरण किया जाए, ताकि सहकारिता की मूलभावना का विकास हो सके और देशवासियों में परस्पर प्रेम और सहयोग की भावना पल्लवित हो सके।

एच-88, शास्त्रीनगर
मेरठ - 250005
उत्तर प्रदेश

कविता

एक-एक पेड़

चैतन्य

हर देश वासी
एक-एक पेड़ लगाएं,
गांव-शहरों में
हरित क्रांति लाएं।
चारों ओर छाए
हरियाली का मंजर,
कोयल की कूक
वसंत ऋतु में
नव सरगम छाए।
ग्रीष्म की धूप
पेड़ों से घबराए,
ठण्डी छांव तले कोई
थकान मिटाए।
काली घटाएं
मेघ बरसाएं,
पावस ऋतु
छम-छम गाए।
शरद की शीत
पेड़ों पर छाए,
धरती अपनी
उमस बढ़ाए।
हर जन एक-एक
पेड़ लगाए,
गांव-शहरों का
प्रदूषण मिटाए।

पो. कोटगढ़,
नोवामुन्डी बाजार
जि. सिंहभूम (प.)
बिहार- 833218

भारत में पंचायती राज संस्थाएं

जब तक सभी स्तरों पर जनता की सक्रिय भागीदारी की निश्चित व्यवस्था न हो तब तक पूर्ण लोकतंत्र कायम नहीं हो सकता । आजादी के बाद से राष्ट्रीय तथा राज्य के स्तरों पर लोकतांत्रिक संस्थाओं में काफी मजबूती आई है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के महत्व को समझते हुए हमारे संविधान के भाग 4 की धारा 40 (राज्य की नीति के दिशा-निर्देशक सिद्धान्तों) में कहा गया है:''राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने और उन्हें ऐसे अधिकारों तथा सत्ता से संपन्न करने के लिए कदम उठायेगा जो उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में काम करने में समर्थ बनाने की दृष्टि से उपयुक्त समझे जायें।'' लेकिन जिला, प्रखंड तथा गांव के स्तरों पर ये संस्थाएं सक्षम तथा जनाकांक्षाओं के प्रति संवेदनशील संस्थाओं की स्थिति और गरिमा प्राप्त नहीं कर पाई हैं।

पंचायती राज संस्थाओं का उद्देश्य ऐसी विकेंद्रीकृत शासन-व्यवस्था कायम करना है जिसमें बुनियादी स्तर पर निर्णय करने का अधिकार सीधे जनता के हाथों में हो।

देश की वर्तमान पंचायती राज प्रणाली समरूप नहीं है और अलग-अलग राज्य में उसका स्वरूप अलग-अलग है। कई राज्यों में ग्राम सभा, जो जनता की सामूहिक संस्था है, इस संरचना की आधारशिला का काम करती है। इसके अतिरिक्त या तो गांव, प्रखंड तथा जिला स्तरों पर त्रिस्तरीय पंचायती संरचना काम करती है या द्वि-स्तरीय व्यवस्था। कुछ राज्यों में सिर्फ गांव के स्तर की ही पंचायत है।

आज 16 राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में त्रि-स्तरीय प्रणाली, 5 में द्वि-स्तरीय तथा 8 में एकस्तरीय प्रणाली काम कर कर रही है। पूर्वोत्तर में मेघालय, मिजोरम तथा नागालैंड, इन तीन राज्यों में पारम्परिक गांव-बूढ़ों की संस्था काम करती है।

लेकिन इन बुनियादी संस्थाओं में अनेक विसंगतियां पैदा हो गई हैं, जिससे ये असली संस्था की प्रतिच्छाया मात्र बन कर रह गई हैं। जहां ये संस्थाएं काम कर रही हैं वहां भी ये ग्रामीण समाज के आर्थिक तथा सामाजिक सुविधाभोगी लोगों के शिकंजे में जा फंसी है। इनका उपयोग निहित स्वार्थों की सिद्धि के लिए किया जाने लगा। पंचायती राज संस्थाओं की संशोधित योजना सुझाने के लिए सरकार ने समय-समय पर कई समितियां नियुक्त कीं।

बलवंतराय मेहता अध्ययन दल

1953 में सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रमों की समीक्षा के लिए बलवंतराय मेहता अध्ययन दल की नियुक्ति की गई। इस अध्ययन दल को इन कार्यक्रमों की समीक्षा विशेष रूप से इस दृष्टि से करनी थी कि इनमें जनता कहां तक शिरकत कर रही है। इस समीक्षा के आधार पर उसे संस्थाओं के बारे में सुझाव देना था जिनके माध्यम से शिरकत संभव हो सके।

इस अध्ययन दल ने आवश्यक संसाधनों, अधिकारों और सत्ता से युक्त निर्वाचित संस्थाओं के गठन और उनके अधीन काम करने वाली विकेन्द्रीकृत प्रशासनिक प्रणाली की सिफारिश करते हुए यह अनुशंसा भी की कि लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की बुनियादी इकाई प्रखंड या समिति के स्तर पर स्थित होनी चाहिए। अध्ययन दल ने गांवों के समूहों के लिए प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित पंचायतों, प्रखंड स्तर पर प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित तथा सहयोजित सदस्यों वाली पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद् गठित करने का सुझाव दिया। उसकी सिफारिश के मुताबिक जिला परिषद् में निचले स्तरों के पदाधिकारियों को पदेन सदस्यों के रूप में शामिल करना था, जिनके अलावा कुछ और भी सदस्य होते और अध्यक्ष पद पर जिलाधीश होते। आगे के दशकों के दौरान इस दल की सिफारिशों के आधार पर देश के अधिकतर भागों में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की गई।

अशोक मेहता समिति

चूंकि पंचायती राज संस्थाओं में समाज के सुविधाभोगी वर्गों का बोलबाला हो गया इसलिए आम आदमी के लिए पंचायती राज की उपयोगिता मर्यादित हो गई। अत: इन संस्थाओं को सही दिशा में मजबूत बनाने के उपाय सुझाने के लिए 1977 में श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक 13 सदस्यीय समिति स्थापित की गई। इस समिति ने द्विस्तरीय व्यवस्था की सिफारिश की एक था जिला स्तर और दूसरा था मंडल स्तर। उसने प्रशासन की इकाई के रूप में प्रखंड स्तर के संगठन को समाप्त कर देने का सुझाव

दिया। इसके साथ ही समिति ने नियमित रूप से चुनाव कराने, पंचायती संस्थाओं को कराधान के लिए अनिवार्य तौर पर कुछ मदें सौंपने और भू-राजस्व की वसूली उन्हें हस्तांतरित कर देने का भी सुझाव दिया। समिति का विचार यह भी था कि पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत बनाने के लिए संवैधानिक व्यवस्था आवश्यक है। 1979 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में समिति की मुख्य सिफारिशों पर विचार किया गया, लेकिन सम्मेलन का फैसला त्रिस्तरीय प्रणाली को ही कायम रखने के हक में हुआ। उसका यह भी विचार था कि एक आदर्श विधेयक तैयार किया जाये, जिसे विभिन्न राज्य अपनी-अपनी जरूरतों के मुताबिक आवश्यक संशोधन-परिवर्धन के साथ कानून का रूप देंगे।

डा. जी. वी. के. राव समिति

सातवीं योजना में जिन बातों पर विशेष जोर दिया जाये उनमें विकास तथा गरीबी-निवारण की समेकित कल्पना का स्थान कायम रहेगा, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सरकार ने 1985 में डॉ. जी.वी.के. राव की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति करके उसे ग्रामीण विकास तथा गरीबी निवारण के लिए प्रशासनिक व्यवस्था पर विचार करने का काम सौंपा। समिति की सिफारिश थी कि नीति-निर्धारण तथा कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए जिले को बुनियादी इकाई होना चाहिए। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं के लिए नियमित रूप से चुनाव कराने का भी सुझाव दिया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना

सातवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में पंचायती राज की अवदशा को स्वीकार करते हुए गांव और प्रखंड स्तर के क्रियाकलाप की आयोजना के पारंपरिक तौर-तरीकों को आमूल-चूल बदलने तथा पंचायती राज संस्थाओं की पर्याप्त धन तथा स्वायत्तता प्रदान करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। उसमें राज्यों से भी यह अपेक्षा की गई कि वे खास तौर से गांव और प्रखंड के स्तरों पर पंचायती राज संस्थाओं को सक्रिय करें ताकि ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों, विशेषकर गरीबी निवारण तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था से संबंधित कार्यक्रमों की योजना बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने में वे भाग ले सकें।

डॉ. एल. एम. सिंघवी समिति

पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकलाप की समीक्षा करने और उनमें फिर से नवजीवन का संचार करने के सुझाव देने के लिए 1987 में डॉ. लक्ष्मी मल सिंघवी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। इस समिति ने ग्राम पंचायतों को अधिक जीवंत और सक्षम बनाने के लिए गांवों के पुनर्गठन की सिफरिश की और इन संस्थाओं को अधिक वित्तीय संसाधन सुलभ कराने का सुझाव दिया।

सरकारिया आयोग

केन्द्र-राज्य संबंधों पर विचार करने के लिए नियुक्त सरकारिया आयोग ने भी इस बात को दर्ज किया कि बहुत सी स्थानीय स्वशासी संस्थाएं मुख्य रूप से इसलिए प्रभावी रीति से काम नहीं कर रही हैं कि इन संस्थाओं के चुनाव नियमित रूप से नहीं कराये जाते हैं और इन्हें बहुत मामूली कारणों से निरस्त कर दिया जाता है। आयोग की राय थी कि राज्यों में नियमित चुनाव कराने, निरस्त किये जाने की स्थिति से बचने आदि के बारे में समान कानून बनाने की आवश्यकता है।

उप-समिति

1988 में श्री पी. के. थुंगन की अध्यक्षता में कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय की संसदीय सलाहकार समिति की एक उप-समिति की नियुक्ति की गई और उसे "जिला स्तर" की आयोजना के लिए जिले में किस प्रकार की राजनीतिक और प्रशानिक संरचना स्थापित की जाये", इस पर विचार करने का दायित्व सौंपा गया। समिति की राय यह बनी कि पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता मिलनी चाहिए। उसने इन संस्थाओं के नियमित और समयानुसार चुनाव के लिए संवैधानिक व्यवस्था करने की भी सिफारिश की और कहा कि इनका कार्यकाल पांच साल का होना चाहिए। उसका विचार था कि जिला परिषद् को केवल आयोजना और विकास से ही संबंधित होना चाहिए।

संविधान (चौसठवां संशोधन) विधेयक, 1989

इस विधेयक में हर राज्य में ग्राम, मध्यवर्ती तथा जिला स्तरों पर पंचायतों के गठन की व्यवस्था थी। इसका अपवाद सिर्फ 20 लाख या उससे कम आबादी वाले राज्य थे, जिनमें मध्यवर्ती स्तर की पंचायत कायम करने की जरूरत नहीं मानी गई थी। उसमें यह प्रस्ताव भी था कि राज्य का विधानमंडल कानून बनाकर पंचायतों को ऐसे अधिकार और सत्ता प्रदान करे जिससे वे स्वशासन की संस्थाओं के रूप में काम कर सकें। विधेयक में उनकी वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए एक वित्त आयोग की नियुक्ति की भी

व्यवस्था थी और पंचायतों के चुनावों की देख-रेख, उनके निर्देशन तथा नियंत्रण का दायित्व निर्वाचन आयोग को सौंपने की तजवीज थी।

लोकसभा ने यह विधेयक पारित कर दिया।

संविधान (चौहत्तरवां संशोधन) विधेयक, 1990

इस विधेयक में प्रत्येक गांव में ग्राम सभा का विधान किया गया था। इसमें गांव तथा अन्य स्तरों पर पंचायतों के गठन का भी प्रस्ताव था। गांवों के स्तर पर प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था थी और अन्य स्तरों पर कम से कम 50 प्रतिशत सदस्यों के ऐसे निर्वाचन का प्रस्ताव था। इसमें स्थानीय प्राधिकरणों को अधिकार और सत्ता (जिनमें कर, महसूल, चुंगी और शुल्क लगाने, वसूलने और इस तरह प्राप्त धन को खर्च करने का अधिकार भी शामिल था) देने, वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए वित्त आयोग के गठन, स्थानीय प्राधिकरणों के लिए पांच साल का कार्यकाल तय करने और किसी भी ऐसे प्राधिकरण के भंग किये जाने पर छह महीने के अंदर उसका चुनाव फिर से कराने की भी सिफारिशें की गई थीं।

विधेयक सितम्बर, 1990 में पेश किया गया, लेकिन उस पर विचार नहीं हो सका। लोकसभा भंग किये जाने के साथ ही यह विधेयक भी रद्द हो गया।

संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) अधिनियम, 1993

वर्तमान सरकार के पदारूढ़ होते ही प्रधान मंत्री तथा ग्रामीण विकास मंत्री श्री पी.वी. नरसिम्ह राव ने पंचायती राज संस्थाओं के लिए एक नया संविधान संशोधन विधेयक तैयार करने का फैसला किया। फलतः 16 दिसम्बर, 1991 में (बहत्तरवां) संशोधन विधेयक पेश किया गया। दिसम्बर 1991 में विधेयक संसद के दोनों सदनों के 30 सदस्यों की एक संयुक्त समिति के विचारार्थ सौंपा गया। विशद् विचार विमर्श के उपरान्त जुलाई 1992 में संयुक्त संसदीय समिति ने अपना प्रतिवेदन संसद के समक्ष प्रस्तुत किया। संयुक्त संसदीय समिति के विचार-विमर्श के दौरान जो आम राय कायम हुई थी उसे और दिसम्बर, 1992 में इस पर बहस के क्रम में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं ने जो मुद्दे उठाये थे उन सबको ध्यान में रखते हुए सरकार ने आवश्यक संशोधन पेश किए और 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा ने तथा 23 दिसम्बर, 1992 को राज्य सभा ने संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) विधेयक लगभग सर्वसम्मति से पारित कर दिया। 17 राज्यों की विधानसभाओं ने इसकी पुष्टि कर दी और इसी के साथ यह विधेयक संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) अधिनियम, 1993 के रूप में सामने आ गया और 24 अप्रैल, 1993 से प्रभावी हो गया।

इस अधिनियम की मुख्य धाराएं निम्न प्रकार हैं:

हर गांव में एक ग्राम सभा होगी और वह गांव के स्तर पर ऐसे अधिकारों का उपभोग करेगी तथा ऐसे कर्तव्यों का निर्वाह करेगी जो संबंधित राज्य का विधानमंडल उसके लिए निर्दिष्ट करेगा।

हर राज्य में गांव, मध्यवर्ती और जिला स्तरों पर पंचायतों का गठन किया जायेगा और इस प्रकार पंचायती राज संरचना को समरूप बनाया जायेगा। लेकिन जिस राज्य की आबादी 20 लाख से अधिक नहीं है वे राज्य अगर चाहें तो उन्हें मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत न स्थापित करने की छूट होगी।

सभी स्तरों के पंचायतों के सभी सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान से होगा, लेकिन मध्यवर्ती तथा जिला स्तरों के अध्यक्षों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से होगा। गांव स्तर के अध्यक्ष चुनाव की पद्धति राज्य सरकार के निर्णय पर छोड़ दी गई है।

अनुसूचित जातियों और जनजातियों की संख्या के अनुपात में हर स्तर पर उनके लिए स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था की गई है। सदस्यों की कुल संख्या में से कम से कम एक तिहाई स्त्रियों के लिए सुरक्षित रखी गई है और ये स्थान बारी-बारी से पंचायत के अलग-अलग निर्वाचन-क्षेत्रों को आवंटित किये जायेंगे। अध्यक्षों के पदों के मामले में भी ऐसे ही आरक्षण किये गये हैं।

अधिनियम में सभी पंचायती राज संस्थाओं के लिए पांच साल का समान कार्यकाल तय किया गया है। अगर कोई पंचायत निरस्त कर दी जाती है तो उस हालत में उस को फिर से गठित करने के लिए उसके निरस्त किये जाने के छह महीने के अंदर चुनाव हो जाने चाहिए।

राज्य विधानमंडलों को यह अधिकार दिया गया है कि वे पंचायतों को उपयुक्त स्थानीय कर लगाने, उन्हें वसूल करने और उनसे प्राप्त धन को खर्च करने के लिए प्राधिकृत कर सकते हैं और राज्य के समेकित कोष से पंचायतों को सहायता-अनुदान दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त हर पांच साल में एक बार एक वित्त आयोग की नियुक्ति होनी है, जो पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करेगा और राज्यीय तथा स्थानीय संस्थाओं के बीच कोषों के वितरण के बारे में राज्य सरकार से सिफारिश करेगा। केन्द्रीय वित्त आयोग राज्य के समेकित कोष को बढ़ाने के लिए आवश्यक उपाय भी सुझायेगा, ताकि राज्य के अंदर पंचायतों के संसाधनों

की कमी की प्रतिपूर्ति हो सके। इस प्रकार अब पंचायती राज संस्थाओं को पहले की अपेक्षा अधिक धन मिलेगा और इस धन के मिलने का वे भरोसा रख सकती हैं। इससे आयोजना प्रक्रिया में जनता की भागीदारी बढ़ेगी।

वित्त की व्यवस्था करने के अतिरिक्त, इस अधिनियम में संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची की मदों में से कुछ ऐसी मदों का निर्देश किया गया है जो पंचायतों को सौंपी जा सकती हैं। ये मदें उन योजनाओं के ऊपर से होंगी जो राज्य सरकार आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के निमित्त उन्हें सौंपना चाहे।

सातत्य को बनाये रखने के लिए अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि इस संशोधन अधिनियम के लागू होने के पूर्व जो भी पंचायतें विद्यमान थीं वे अपने पूर्ण कार्यकाल तक कायम रहेंगी, बशर्ते कि संबंधित राज्य की विधानसभा प्रस्ताव पास करके उन्हें भंग न कर दे। राज्य विधानमंडलों को इस संशोधन अधिनियम के लागू होने के दिन से एक साल का समय इस बात के लिए दिया गया है कि वे इस दौरान अपने पंचायत अधिनियमों में ऐसे संशोधन कर लें जो संविधान में की गई व्यवस्थाओं के अनुरूप हो।

इस अधिनियम से सामान्यत: पूरे ग्रामीण विकास कार्यक्रम को तथा विशेष रूप से जवाहर रोजगार योजना को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा। जवाहर रोजगार योजना का बुनियादी सिद्धांत यह है कि इस कार्यक्रम के अधीन जिन ग्राम पंचायतों को निश्चित तौर पर आवंटन प्राप्त होंगे वे अपने गांवों में आरंभ की जाने वाली योजनाओं के बारे में फैसला करेंगी। पंचायत स्तर पर निर्वाचित संस्था अपने निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी होगी, जिससे जवाहर रोजगार योजना के कार्यान्वयन में जनता की इच्छा अब अधिक प्रतिबिंबित हो पायेगी। इस अधिनियम के संदर्भ में इस बात का महत्व भी बहुत व्यापक हो जाता है कि आठवीं योजना में ग्रामीण विकास परिव्यय को बढ़ाकर 30,000 करोड़ रुपये कर दिया गया है। अब संविधान में विहित किसी भी अन्य लोकतांत्रिक संस्था की तरह पंचायतों का भी अपना नियमित और स्थायी अस्तित्व होगा, साथ ही उनके हाथों में जनता की भलाई के लिए आर्थिक विकास कार्यक्रमों को लागू करने के पर्याप्त अधिकार और वित्तीय संसाधन भी होंगे।

सभार : पत्र सूचना कार्यालय

पृष्ठ 22 का शेष

बस जाने लगी थी। सुलतान जल्दी से उसमें चढ़ गया। नीचे से नत्थू उसके लिए हाथ हिलाने लगा। उसने भी हाथ हिलाया और गहरी सांस खींच कर सिर खिड़की से अंदर कर लिया।

खिड़की वाली सीट पर बैठा हुआ सुलतान सड़क के किनारे के पीले-पीले सरसों के खेतों को देखता जा रहा था। ख्यालों में ही वह अपने गांव-जवार में रमने लगा। उसका अपना गांव जहां उसकी मां और चंदरी उसकी बाट जोह रही होंगी।

बस बराबर रोहतक की दिशा की ओर दौड़ती जा रही थी। सुलतान हर किलोमीटर के पत्थर को देखता जा रहा था। ऐसे में गांव की सोंधी सोंधी गंध उसके मन-प्राणों को महका रही थी। बस बराबर गांव की ओर बढ़ती जा रही थी।

138, विद्या बिहार,
पिलानी 333031 (राजस्थान)

पृष्ठ 28 का शेष

प्रदर्शनियां लगाकर, प्रोजेक्टर से स्लाइड्स एवं चलचित्रों के माध्यम से, आम व्यक्तियों को उपलब्ध कराई जानी चाहिए। वनों के विस्तार हेतु ग्रामीण महिलाओं के विभिन्न संगठनों एवं समाज सुधार संगठनों का सहयोग अधिक पेड़ लगाने के कार्यक्रमों में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इस कार्य हेतु उन्हें प्रेरित किया जाए।

उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए ही वित्त मंत्री डा. मनमोहन सिंह ने पिछले वर्ष के बजट (1992-93) प्रावधान 280 करोड़ रुपये की तुलना में वर्ष 1993-94 के लिए ''पर्यावरण और वन'' के अंतर्गत 318 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। बंजर भूमि विकास के लिए इस दौरान 50 करोड़ रुपये की अलग से व्यवस्था की गई है। इस प्रकार कृषि और औद्योगिक क्रांति के बाद ''पर्यावरण क्रांति'' हेतु पृष्ठभूमि तैयार की जा रही है तथा समाज के समस्त घटकों के प्रयास से ही यह कार्य सम्पन्न हो सकता है।

53-एल, सेक्टर-4,
बंगला साहिब मार्ग, गोल मार्किट
नई दिल्ली-1

धान के खेतों में मछली पालन

✍ पद्मा नन्द कुमार

मत्स्य वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि धान के साथ-साथ मछलीपालन करने से एक हेक्टेयर धान के खेत से एक साल में दो फसलें लेकर 6 टन धान के अतिरिक्त 700 किलोग्राम मछलियां भी अतिरिक्त उपज के रूप में प्राप्त हो जाती हैं। अत: किसान धान एवं मछली की सांझी खेती से अतिरिक्त आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

धान के खेतों में मछली पालन, इटली, जापान, मलेशिया तथा अनेक अफ्रीकी देशों में काफी प्रचलित हैं। भारतवर्ष में भी इस प्रकार की खेती का व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ है। फलत: भारत के पश्चिम बंगाल, केरल, उत्तर प्रदेश एवं बिहार राज्य में इस प्रकार की खेती अपनाई गई है।

धान के खेतों में निम्न तीन प्रकार से मत्स्य पालन को प्रोत्साहन दिया जाता है:

(क) कुछ क्षेत्रों में बाढ़ के समय धान के खेतों में पर्याप्त मात्रा में पानी जमा हो जाता है। फलत: यहां कुछ मछलियों की वृद्धि आसानी से होने लगती हैं। अत: इन खेतों से बांध द्वारा मछलियों को बाहर निकलने से रोका जाता है। लेकिन इन खेतों में मछलीपालन नियमित रूप से नहीं किया जा सकता है।

(ख) कुछ समय के लिए धान के खेत को तालाब की तरह व्यवहार में लाया जाता है। किन्तु यहां धान एवं मछलियों की खेती एक साथ न करके बल्कि एक के बाद दूसरे की खेती की जाती है। मछलियों के जीरा को इन खेतों में गिराया जाता है, जहां कि साल भर पानी रहता है।

(ग) किन्तु कुछ खेतों में धान एवं मछली की खेती एक साथ की जाती है। हालांकि कृषकों का यहां मुख्य उद्देश्य धान उपजाना होता है एवं सहायक खेती के रूप में मत्स्यपालन को अपनाया जाता है।

धान के इन खेतों में मछलीपालन वहां की स्थिति, जलवायु, मछलियों की उपलब्धता, मछलियों की जातियों तथा धान के किस्मों पर निर्भर करती है। साधारणत: धान के सभी खेतों में मछलियों की जीरा पाई जाती है। वैसे धान के खेतों में मछलीपालन हेतु विदेशी कार्प, भारतीय कार्प और मरैल्स को विशेष रूप से चुना जाता है। परन्तु वायुश्वासी मछलियां जैसे सिंघी, मांगुर, कवई, चितल, गरई आदि भी पोषक तत्व की दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण हैं। फिर इनका संवर्धन गंदे पानी में भी किया जा सकता है जहां कि कार्प मछलियां पाली नहीं जा सकती हैं। मत्स्य वैज्ञानिकों ने बतलाया है कि प्रेरित प्रजनन एवं उन्नत संवर्धन द्वारा इनका उत्पादन 3 से 5 टन तक प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर बढ़ाया जा सकता है।

धान के खेतों में मछलीपालन हेतु हमारे देश में भी विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकों का विकास किया गया। भारत के पश्चिम बंगाल राज्य में धान के खेतों में मछलीपालन हेतु अनेक अनुसंधान किये गए हैं। वैज्ञानिकों ने पाया है कि धान के खेतों में रोहू, कतला और मृगल (नैनी) की वृद्धि दर 34.4 प्रतिशत है, जो कि तालाब से भी अधिक है।

धान के खेतों में प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि 7-15 प्रतिशत धान की उपज में वृद्धि हुई। इसके साथ ही 112 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर मछली का उत्पादन भी प्राप्त हुआ। इसके अलावा 'साइप्रस कारपिओं' तथा टिलापिया की जातियों ने भी अच्छी उपज दी है।

धान के जिन खेतों में मछली पालन किया जाता है, उनमें पानी की पर्याप्त व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके लिए खेत के चारों ओर मजबूत मेड़ या बांध बनाना पड़ता है। इस प्रकार की व्यवस्था करने से पानी खेत से बाहर नहीं निकल पाता है।

धान के खेतों में प्राकृतिक भोजन के रूप में मछलियों को क्रसटेसिया, अंगुलि कारा तथा अन्य कीड़े-मकोड़े प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार मछलियां हानिकारक कीड़े और खरपतावार को खाकर खेत के लिए कर्षण का काम करती हैं। इसके अतिरिक्त मछलियों के उत्सर्जी पदार्थ खेत को उचित किस्म का खाद भी प्रदान करते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसान धान एवं मछली की सांझी खेती को अपनाकर अतिरिक्त आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। कृषकों को इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

05, गौरीशंकर लॉज, मुसाल्लहपुर,
पो. महेन्द्रू, पटना-800006
(बिहार)

प्रोटीन और विटामिन मानव आहार के महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत

✍ राजीव रंजन वर्मा

मानव शरीर के लिए भोजन में प्रोटीन का होना बहुत ही आवश्यक है। भिन्न-भिन्न सब्जियों, फलों और खाद्य सामग्रियों का विटामिन से परिपूर्ण होना आवश्यक है। इनमें कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, खनिज पदार्थ और विटामिन पाये जाते हैं। जल के रूप में प्रोटीन, वसा एवं कार्बोहाइड्रेट "सम्पुष्ट पोषक" कहलाते हैं।

प्रोटीन शरीर में सर्वाधिक बहुपयोगी तत्व है। यह शरीर की कोशिकाओं के निर्माण का अनिवार्य पदार्थ है, यह मांसपेशियों एवं अन्य ऊत्तकों तथा एंजाइम्स जैसे महत्वपूर्ण घटकों का निर्माण करता है, जो भोजन की पाचन क्रिया में बहुत सहायक होते हैं, साथ ही संक्रमण रोगों के विरुद्ध शरीर की रक्षा करने वाले प्रतिरक्षी भी प्रकृति में मुख्यतया 'प्रोटीन' ही है।

"प्रोटीन" का पोषक मूल्य आवश्यक "एमीनो एसिड संयोजन" पर निर्भर करता है। एमिनो एसिड ही ऐसी इकाई है, जिनसे "उत्तक" प्रोटीन का निर्माण होता है। विटामिनों को मोटे तौर पर "वसा" विलेय और "जल" विलेय विटामिनों में विभाजित किया जा सकता है, विटामिन 'ए', 'डी', 'ई', और विटामिन 'के' वसा में घुलनशील है, जबकि विटामिन 'सी' और 'बी' (विटामिन बी-1, बी-2, बी-3, बी-6, एवं विटामिन बी-12) जल में घुलनशील है।

उपाचय में विटामिन बहुत आवश्यक है। विटामिन विभिन्न ऑक्सीकारी एंजाइम्स के रूप में विशिष्ट प्रोटीन का संयोजन करते हैं, जिनका संबंध शरीर में "कार्बोहाइड्रेट", "प्रोटीन" एवं "वसा" के भंजन से है। इस प्रकार वे उस तंत्र में घनिष्ठ रूप से शामिल है, जो उपाचय के अंतिम उत्पाद के रूप में उर्जा कार्बनडाइ-आक्साइड एवं जल का मोचन करते हैं।

संतुलित आहार के रूप में मनुष्य को अनाज-चावल, गेहूं, मकई इत्यादि, दाल एवं गिरी, दूध, मूल वाली सब्जियां तथा अन्य हरी सब्जियाँ, फल, मांस मछली, अंडा, वसायुक्त भोजन, शक्कर इत्यादि मुख्य हैं।

शाकाहारी भोजन करने वाले व्यक्ति को मांसाहारी की तुलना मे दाल, दूध, सब्जियां आदि अधिक मात्रा में लेनी चाहिए ताकि मांसाहारी भोजन के अनुकूल शाकाहारी भोजन में विटामिन और प्रोटीन का समायोजन हो सके।

चावल, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मकई, जैसे अन्न भारत में मुख्य भोजन है। अन्न, कार्बोहाइड्रेट से सम्पन्न होते हैं। उनमें सामान्यत: 6 से12 प्रतिशत तक प्रोटीन होती है। अनाज वाले सम्पूर्ण अन्न विटामिन "बी" के महत्वपूर्ण स्रोत हैं, किन्तु धान की कुटाई में चावल की ऊपरी परतों से "थायमीन" समाप्त हो जाता है। कुटाई किए जाने पर भी उतना चावल अपने थायमीन पदार्थ को नहीं त्यागता। "कैरोटीन" की कुछ मात्रा रखने वाली "पीली मकई" के सिवाय कोई अन्य अनाज विटामिन "ए" या "सी" का स्रोत नहीं है।

दालों में प्रोटीन परिपूर्ण मात्रा में पायी जाती है। दाल खनिजों का समृद्ध स्रोत नहीं है, किन्तु वे विटामिन "बी" से समृद्ध हैं। सूखी दालों में विटामिन "सी" नहीं होता पर यदि उन्हें अंकुरित कर दिया जाए तो विटामिन "सी" की पर्याप्त मात्रा उत्पन्न हो जाती है, अधिकांश हरी पत्ती वाली सब्जियां चूने, लोहे, केरोटीन, विटामिन "सी" राइबोफलेविन और फॉलिक अम्ल के समृद्ध स्रोत हैं।

"मूल" और "कंद" कार्बोहाइड्रेट से सम्पन्न होती है, किन्तु गाजर जैसे भोजन में प्रोटीन (विटामिन "ए") की मात्रा परिपूर्ण होती है। आलू जैसे पदार्थ में कार्बोहाइड्रेट एवं विटामिन "सी" की मात्रा काफी होती है। अन्य सब्जियाँ वे हैं जो पत्तीदार या मूल वाली की श्रेणी में नहीं आती, ये सब्जियाँ भिण्डी, ककड़ी, खीरा, टमाटर, करेला, झींगा/झींगी, बैंगन आदि विटामिन और खनिज के काफी अच्छे स्रोत हैं।

सामान्यत: सभी फल और विशेषकर संतरा, आवलां, अमरूद और नींबू विटामिन "सी" से परिपूर्ण होते हैं। आम और पपीता जैसे पीले फलों में कैरोटीन होता है। खजूर जैसे सूखे फल लौह-खनिज के स्रोत हैं। मछली में प्रोटीन एवं विटामिन "बी" के साथ खनिज विशेष रूप से प्राप्त होता है।

गुठलीदार सूखे फल (नट) और तिलहन, वसा, प्रोटीन और खनिज के अच्छे स्रोत हैं। साथ ही मूँगफली और काजू जैसे काष्ठ फल विटामिन के अच्छे स्रोत हैं, किन्तु भारत जैसे देश में गिने-चुने लोग ही इसका उपभोग कर पाते है।

दूध एक सम्पूर्ण आहार है। शिशुओं और छोटे बच्चों के लिए दूध एक आदर्श आहार है। साथ ही मानव के लिए यह एक अच्छा पूरक भोजन भी है इसमें विटामिन "ए" विटामिन "बी" -2 तथा लौह-खनिज के अतिरिक्त सभी पोषक तत्व होते हैं।

हमारे भोजन में पाये जाने वाले विटामिन भिन्न-भिन्न भोज्य पदार्थों के रूप में हमारे शरीर तक पहुंचते हैं, इस विटामिन के क्या-क्या फायदे हैं ? यह विटामिन किन वस्तुओं में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, इसकी कमी से क्या-क्या रोग हो सकते हैं ? इसकी जानकारी हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में आवश्यक है।

1. विटामिन "ए" वसा में घुलनशील है। स्रोत - दूध की सामग्री से प्राप्त होता है - मक्खन, घी, क्रीम, अंडा और गाजर के साथ-साथ हरी सब्जियों में पाया जाता है। इसकी कमी के कारण (क) रतौंधी - (आँख की बीमारी हो जाती है) (ख) सांस की नली में लेयर जम जाते हैं। (ग) मसूड़ों पर परत चढ़ जाती है।
2. विटामिन "बी" 1 जल में घुलनशील है। यह सभी प्रकार के दाल, अनाज, अण्डा एवं खमीर से प्राप्त होता है। इसकी कमी के कारण बेरी-बेरी रोग होता है, जो नर्वस सिस्टम से जुड़ा होता है।
3. विटामिन बी-2 सभी प्रकार की पत्तेदार सब्जियों, मीट, दूध, आटा इत्यादि से प्राप्त होता है। इसकी कमी के कारण (क) डरमाटाइटिस, (ख) डायरिया और (ग) ओठ में अल्सर, जुवान में छाले पड़ जाने की बीमारी होती है।
4. विटामिन बी - 3 खमीर, मीट, आटा, बीजवाली सब्जियों एवं हरी सब्जियों से प्राप्त होता है। इसकी कमी के कारण त्वचा में "प्लेग्ना" (चर्म रोग) होता है तथा मुंह में छाले पड़ते हैं।
5. विटामिन 'बी' -6 हरी पत्तेदार सब्जियों से प्राप्त होता है। इसकी कमी से नाजिया बीमारी होती है, जिससे मनुष्य मूर्छित हो जाता है, साथ ही बुखार भी आता है।
6. विटामिन "बी" -12 यह मुख्यत: लीवर, कीडनी और अण्डे में पाया जाता है। इसकी कमी के कारण शरीर में लाल रक्त कण के निर्माण में खराबी पहुंचती है। खून की कमी हो जाती है। बीमारी को "पेरेनियस एनिमिया" कहा जाता है।
7. विटामिन "सी" - यह जल में घुलनशील है। यह सभी खट्टे फलों जैसे - नींबू, संतरा आंवला इत्यादि से प्राप्त होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति को 70 मिली0ग्रा0 प्रतिदिन इसकी आवश्यकता है। इसका कार्य हमारे शरीर में किसी आने वाले जर्म से लड़ने की क्षमता पहुंचाना है। विटामिन "सी" की कमी से स्कर्वी बीमारी अर्थात त्वचा सूख जाती है।
8. विटामिन "डी" - यह वसा में घुलनशील है। इसका मुख्य स्रोत सूर्य की रोशनी, अण्डा, और दूध तथा दूध की बनी सामग्री से प्राप्त होता है। बच्चों में इसकी कमी से "रिकेट्स" होती है तथा बड़ों में "ओस्टोमिलिया" होती है, इसकी कमी से शरीर में हड्डियों तथा दातों के विकास में कमी आती है।
9. विटामिन "ई" - इसका मुख्य स्रोत अंकुड़ा हुआ बीज/ अनाज है। यह वसा में घुलनशील है। इसकी कमी के कारण 'बांझपन' एवं 'नपुंसकता' होती है।
10. विटामिन "के" - सब्जियों, फल, अण्डा, मछली एवं आटा से प्राप्त होता है। इसकी कमी से रक्त का जमना बुरी तरह से प्रभावित होता है। रक्त का बहना जब कभी चोट लगने पर बन्द नहीं होगा तब मनुष्य के शरीर का सारा रक्त शरीर से बाहर निकल जाएगा और मनुष्य की मृत्यु हो जाएगी।

प्रोटीन से भरपूर खाद्य पदार्थों को शरीर का निर्माण करने वाला खाद्य कहते हैं। विशेषकर शरीर की वृद्धि की अवस्था में प्रोटीन की अधिक जरूरत पड़ती है, अत: प्रोटीन शिशुओं, बच्चों, गर्भवती महिलाओं और दुग्धपान कराने वाली महिलाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण है, शरीर की टूट-फूट की मरम्मत करने में भी प्रोटीन का कोई विकल्प नहीं शरीर की विभिन्न कोशिकाओं के नष्ट होने पर उनका पुनर्निर्माण करने में प्रोटीन की भूमिका सर्वाधिक प्रभावशाली होती है।

मानव आहार में कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की कमी हो जाती है तब ऐसी स्थिति में प्रोटीन ऊर्जा उत्पादन के लिए प्रयुक्त होती है। प्रोटीन के उचित उपयोग के लिए भोजन में कार्बोहाइड्रेट एवं वसा की पर्याप्त मात्रा मौजूद होनी चाहिए।

प्रोटीन के पोषक मान के अनुसार इसे तीन वर्गों में रखा गया है:

(क) पूर्ण प्रोटीन, जिस भोज्य पदार्थ में सबसे अधिक प्रोटीन की

मात्रा पाई जाती है, जैसे - मांस, मछली, अण्डा और दूध में पाया जाने वाला प्रोटीन।

(ख) दूसरे वर्ग के प्रोटीन जिसकी मात्रा औसत दर्जे के पोषक मान की होती है। यह अनाजों दालों एवं तिलहनों में पाया जाने वाला प्रोटीन है। ये एक ओर बच्चों को साधारण शारीरिक वृद्धि प्रदान करता है तो दूसरी ओर वयस्कों की प्रोटीन की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

(ग) तीसरे प्रकार का प्रोटीन विभिन्न प्रकार के अन्न एवं मक्के में पाया जाता है। इसके अभाव में बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास नहीं हो पाता है और न ही वयस्कों की प्रोटीन की जरूरत की पूर्ति हो पाती है ।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए संतुलित आहार का लेना आवश्यक है। संतुलित आहार में प्रोटीन की किस्म और मात्रा की जानकारी का विशेष महत्व होता है। चूंकि देश में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में खाद्यान्नों में नहीं मिल पाता है। अत: उपलब्ध स्रोतों के समुचित उपयोग से ही पोषण स्तर में सुधार किया जा सकता है। अनाजों के साथ दालों को एक साथ भोजन में शामिल करने पर प्रोटीन की कमी को पूरा किया जा सकता है।

बच्चों एवं शिशुओं की प्रोटीन की मांग दूध से ही पूरी हो जाती है किन्तु किशोरों और वयस्कों को दूध से प्रोटीन की पूर्ति नहीं हो पाती है। प्रोटीन के मुख्य स्रोत दाल, अनाज, तिलहन, माँस, मछली, अण्डा, और दूध में हैं। फलों एवं सब्जियों/हरी सब्जियों में प्रोटीन की मात्रा कम होती है।

प्रोटीन की कमी से होने वाले दुष्प्रभाव : प्रोटीन की कमी के लक्षण शिशुओं और बच्चों में दिखाई पड़ते हैं। प्रोटीन की कमी से एक से तीन वर्ष के बच्चों में "क्वाशिओरकोर" बीमारी होती है।

बच्चों के शरीर का संतुलित विकास रुक जाता है। प्रोटीन की कमी रोग रोधक क्षमता को भी कम कर देती है।

शरीर में पानी भरने से शरीर में सूजन हो जाती है। त्वचा सूखकर बदरंग हो जाती है। चमड़ा जगह-जगह फटने लगता है। बालों की चमक कम हो जाती है। खून की कमी हो जाती है, रक्त की कमी, भूख में कमी तथा विटामिन की कमी के प्रभाव प्रकट होने लगते हैं।

गर्भवती महिला और स्तनपान कराने वाली महिलाओं में प्रोटीन की कमी अधिक पाई जाती है, इसका कुप्रभाव शिशुओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है, ऐसी दशा में प्रोटीन की जरूरत बढ़ जाती है। अत: प्रोटीन से भरपूर आहार का लेना नितान्त आवश्यक है। इसी प्रकार वयस्कों में प्रोटीन की कमी से शरीर के भार में कमी, रक्त की कमी तथा रोगरोधी क्षमता में कमी के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। प्रोटीन की कमी के कारण हड्डियों के टूटने का खतरा बढ़ जाता है क्योंकि प्रोटीन हड्डियों के बीच पायी जाने वाली अस्थि-मज्जा का निर्माण करके उसे ठोस बनाती है।

मनुष्य के अच्छे स्वास्थ्य के लिए प्रोटीन की भरपूर मात्रा का होना बहुत ही आवश्यक है। प्रोटीन की कितनी मात्रा ली जाए, यह मुख्यत: व्यक्ति की आयु, वजन एवं अन्य दशाओं पर निर्भर करता है। बच्चों और किशोरों की वृद्धि के लिए अतिरिक्त प्रोटीन की जरूरत पड़ती है। इसी तरह गर्भवती एवं स्तनपान कराने वाली महिलाओं को प्रोटीन का प्रयोग करना चाहिए।

प्रोटीन और विटामिन हमारे शरीर को संतुलित रखते हैं। हमारे शरीर के पूर्ण विकास के लिए इन दोनों पदार्थों का मुख्य योगदान है। शरीर का सम्पूर्ण मानसिक एवं शारीरिक विकास इसी के सहयोग और कार्य पर निर्भर करता है। इसकी कमी को कोई अन्य पदार्थ पूरा नहीं कर सकता। अत: प्रोटीन और विटामिन मनुष्य के शरीर के विकास एवं स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य हैं।

बिहार ग्रामीण विकास संस्थान, हेहल,
रांची-834005.

जड़ी-बूटियों का दोहन : एक ज्वलन्त पर्यावरणीय समस्या

कोशल किशोर चतुर्वेदी

प्रकृति में पाये जाने वाले समस्त जड़ तथा चेतन पदार्थों से मनुष्य का आदि-काल से सम्बन्ध रहा है। प्रकृति की गोद में वह जन्म लेता है, पनपता, बढ़ता है तथा अपनी समस्त जैविक क्रियाओं का स्वाभाविक विकास करता है। उसकी सारी संस्कृतियां प्रकृति में ही रहकर पनपी, फली-फूली तथा विकसित हुईं। प्रकृति ने मानव जीवन को संरक्षण प्रदान किया। रहने के लिए जगह दी, सांस लेने के लिए शुद्ध प्राण वायु, पीने के लिए स्वच्छ पानी तथा विकास के लिए ढेरों सारी प्राकृतिक सम्पदाएं दीं।

मनुष्य को विरासत के रूप में मिले प्राकृतिक संसाधनों में सबसे महत्वपूर्ण उसके चारों ओर पायी जाने वाली वन-सम्पदा है। वन न सिर्फ हमारे पर्यावरण को शुद्ध रखते हैं बल्कि हमारी अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में भी इनकी अपनी अहम भूमिका है। ग्रामीण तथा आदिम-जातियों की मूलभूत आवश्कताओं जैसे ईंधन, चारा तथा छोटी-छोटी इमारती लकड़ियों की आपूर्ति हमारे जंगलों से ही होती है। विभिन्न उद्योगों जैसे कागज, दियासलाई, लाख, रेशम आदि के लिए कच्चा माल भी वनों से ही मिलता है। चन्दन, रबड़, गोंद, फूल-झाडू आदि उपयोगी वस्तुएं वनों की ही देन हैं। सदियों से मकान बनाने के लिए, कृषि औजारों के लिए फर्नीचर, रेल के डिब्बे, पानी के जहाज, खेल के समान आदि के लिए लकड़ी जंगलों से ही ली जाती रही है। एक से एक बढ़कर जड़ी-बूटियां इन जंगलों में रही हैं जिन्हें विभिन्न प्रकार की बीमारियों को दूर भगाने में औषधि के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। इतने सारे प्रत्यक्ष लाभों के साथ ही साथ इनके ढेरों सारे अप्रत्यक्ष लाभ भी हैं। ये जहां पर्यावरण को स्वच्छ रखते हैं, पर्यावरणीय सन्तुलन बनाये रखने में मदद करते हैं, प्रदूषण की समस्या से छुटकारा दिलाते हैं वहीं वन्य जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों के साथ ही आदिम जातियों की शरण-स्थली भी हैं। इसके अलावा ये भूमि अपरदन रोकने, वर्षा लाने, बाढ़ के प्रकोप को कम करने तथा मिट्टी को उपजाऊ बनाने में सहायक हैं। किन्तु मनुष्य ने इन सब का समुचित उपयोग करने के बजाय उसने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करना शुरू कर दिया, अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जंगलों का सफाया करने लगा, वृक्षों को काटना शुरू किया, वन्य जीव जन्तुओं को बेरहमी से मारने लगा तथा प्राकृतिक नदी, नालों झीलों आदि को गन्दा किया जिससे पानी के जीवों तथा वनस्पतियों के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। वनों का व्यापारिक कटान, जंगलों को साफ करके बड़े-बड़े बांधों तथा चौड़ी-चौड़ी सड़कों के निर्माण, पर्यटन तथा खनन उद्योग ने न केवल आदिम-जातियों को उनके स्थान से बेदखल किया है बल्कि वनों की अन्धा-धुन्ध कटाई की है, वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं का सफाया किया है तथा ढेरों सारे प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट किया है। प्राकृतिक नियमों तथा व्यवस्थाओं के अनुरूप चलने को कौन कहे, उल्टे उसने प्रकृति पर ही अधिकार जमाना शुरू कर दिया।

आज विकास के नाम पर जहां हमारे प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट किया जा रहा है, वृक्षों को काटा जा रहा है, जंगलों का सफाया किया जा रहा है वहीं इन जंगलों में पायी जाने वाली उपयोगी वनस्पतियों तथा बहुमूल्य जड़ी-बूटियों का दोहन बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। जहां एक ओर हमारी बहुमूल्य जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों, वन्य-जीवों, जंगली उत्पादों आदि को आदिम-जातियों द्वारा नष्ट होने का ख़तरा रहा है। वहीं आज हमारे सभ्य कहे जाने वाले समाज के लोगों द्वारा इन्हें सबसे ज्यादा खतरा उत्पन्न हो गया है। आज बड़े बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लोग अवैध रूप से प्राकृतिक सम्पदाओं को नुकसान पहुंचा रहे हैं। ये ऐसे प्रतिष्ठानों के लोग हैं जिनका सीधा संबंध हमारी वन-सम्पदा से है। इससे न केवल हमारे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन होता है बल्कि ढेरों सारी वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों, वन्य जीवों आदि की प्रजातियाँ लुप्त हो गयी हैं। बहुतों की प्रजातियां लुप्त होने के कगार पर हैं जिनकी भरपाई होना असम्भव है।

वर्तमान समय में देश के जंगलों से बहुमूल्य जड़ी-बूटियों का दोहन एक गम्भीर समस्या बन गयी है। वनों का विनाश आज तेजी से हो रहा है, क्योंकि भौतिकता के इस युग में वनोत्पादनों की मांग खूब बढ़ी है। हमारी वनस्पतियां, वन्य प्राणी आज मानव की प्रगति की अंधी दौड़ के शिकार होते जा रहे हैं। अवैध रूप

से वनोत्पादनों, तथा विभिन्न जड़ी-बूटियों को प्राप्त करने की होड़ सी लगी हुई है कि कौन कितना अधिक प्राप्त कर लें। चोरी-छिपे जड़ी-बूटियों को इकट्ठा करते लोग आज जंगलों में देखे जा सकते है जो अपने काम की चीज ही इकट्ठा नहीं करते बल्कि अन्य प्रजातियों को भी नष्ट कर डालते हैं। ठेकेदारों द्वारा करायी जाने वाली वृक्षों की कटाई से कई गुना अन्य वृक्ष भी काट दिये जाते हैं साथ ही साथ वृक्षों के नीचे उगने वाली छोटी-छोटी वनस्पतियां भी इन लोगों द्वारा रौंद दी जाती हैं। इनके द्वारा वृक्षों की कटान में किसी प्रकार की सावधानी नहीं बरती जाती।

जहां एक ओर हमारी बहुमूल्य जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों, वन्य-जीवों, जंगली वृक्षों के उत्पादों को आदिम-जातियों द्वारा नष्ट होने का खतरा रहा है, वहीं सभ्य कहे जाने वाले समाज के लोगों द्वारा इन्हें सबसे ज्यादा खतरा उत्पन्न हो गया है। आज बड़े-बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लोग अवैध रूप से प्राकृतिक-सम्पदा को नुकसान पहुंचा रहे हैं। ये ऐसे प्रतिष्ठानों के लोग हैं जिनका सीधा संबंध हमारी वन-सम्पदा से है। इससे न केवल हमारे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन होता है, बल्कि ढेरों सारी वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों तथा वन्य जीव-जन्तुओं की प्रजातियां लुप्त हो गयी हैं। बहुतों की प्रजातियां लुप्त होने के कगार पर हैं जिनकी भरपाई होना असम्भव है।

इन सब के अलावा जंगलों में रहने वाली आदिम-जातियां जंगलों का बड़े पैमाने पर सफाया कर ही रही हैं। वन इन जन-जातियों की आजीविका का एक-मात्र साधन हैं। वनों से ही ये अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इनके विभिन्न सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों पर भी ढेरों सारी वनस्पतियां तथा इनके उत्पाद प्रयोग किये जाते हैं। इसके लिए जहां ये कुछ वनस्पतियों का ही उपयोग करते हैं वहीं कई गुना दूसरी वनस्पतियों का सफाया भी करते हैं। जन-जातियों के मध्य पायी जाने वाली स्थानान्तरित खेती की विधि द्वारा वनों का विनाश बड़े पैमाने पर हो रहा है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अब भारत की धरती पर केवल 11 प्रतिशत भू-भाग पर ही वन रह गये हैं।

देश में प्रतिवर्ष लगभग 10-12 लाख हेक्टेयर वनों का सफाया किया गया है जबकि प्रारम्भ में पृथ्वी का 70 प्रतिशत भू-भाग वनों से आच्छादित था। बढ़ती हुई जनसंख्या एवं उनकी आवश्यकताओं की मांग से हमारा वन-क्षेत्र दिन-प्रतिदिन संकुचित होता जा रहा है। इस दबाव में ढेरों सारी प्रजातियां लुप्त हो गयी हैं या लुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। जंगलों में निरन्तर इन प्रजातियों की कम होती संख्या इस बात का द्योतक हैं। सर्पगन्धा, जिसे वनस्पति विज्ञान की भाषा में राउवोल्फिया सर्पेन्टिना कहा जाता है एक अत्यन्त उपयोगी औषधीय पौधा है। इसमें रिर्जपाइन नामक महत्वपूर्ण एॅल्कोलायड पाया जाता है। यह उच्च रक्त दाब को कम करने के लिए उपयोगी है। यह पौधा जंगलों में अब बहुत ही कम दिखाई पड़ता है। जहां है भी वहां से खोज-खोज कर लोग खोद ले आ रहे हैं। इसकी जड़ ही उपयोगी है। दवा बनाने के लिए इस पौधे को औषधीय प्रयोगशालाओं द्वारा बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है। इन लोगों द्वारा इस पौधे को सबसे ज्यादा खतरा है। इसके अलावा हेमीडेसमस, इन्डिकस, होमोनोइया राइपेरिया, एस्पेरेगस ऐसीमोसस, टीनोस्पोरा, इन्डिकस आदि औषधीय पौधों का व्यापारिक पैमाने पर दोहन होने से जंगलों में इनकी उपलब्धता कम हुई है। भृंगराज केश तेल बनाने के लिए इक्लिप्टा एल्बा को बड़े पैमाने पर उखाड़ा जा रहा है। क्लोरोफाइटम टयूबिरोसम तथा कुरकुलीगो ऑरक्वाइडिस, जिसे क्रमश: सफेद मूसली तथा काली-मूसली कहा जाता है, के पौधे आज जंगलों में बहुत कम ही दिखाई देते हैं। इनकी संख्या इधर के कुछ वर्षों में काफी कम हुई है।

प्राकृतिक संसाधन जीवन के लिए आधार उपलब्ध कराते हैं। इनको संरक्षित करने के लिए प्रभावी उपाय करना अपरिहार्य हैं। जिससे अनन्तकाल तक इनका प्रयोग किया जा सके और अस्तित्व की रक्षा हो सके।

रिसर्च स्कालर
वनस्पति विज्ञान
टी-3/3, टी0बी0 कालोनी
तेलियर गंज, इलाहाबाद
211004 (उ0प्र0)

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/93
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

3593.

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/93
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित